

आचार्य भगवन् श्रीमद् उमास्वामि विरचित

# तत्त्वार्थ सूत्र

( मोक्षशास्त्र )

: आशीर्वाद :

परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी  
महाराज के सुयोग्य शिष्य, निर्ग्रीथ गौरव

परम पूज्य मुनि श्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज  
एवं

पूज्य मुनि श्री १०८ विराटसागर जी महाराज ससंघ

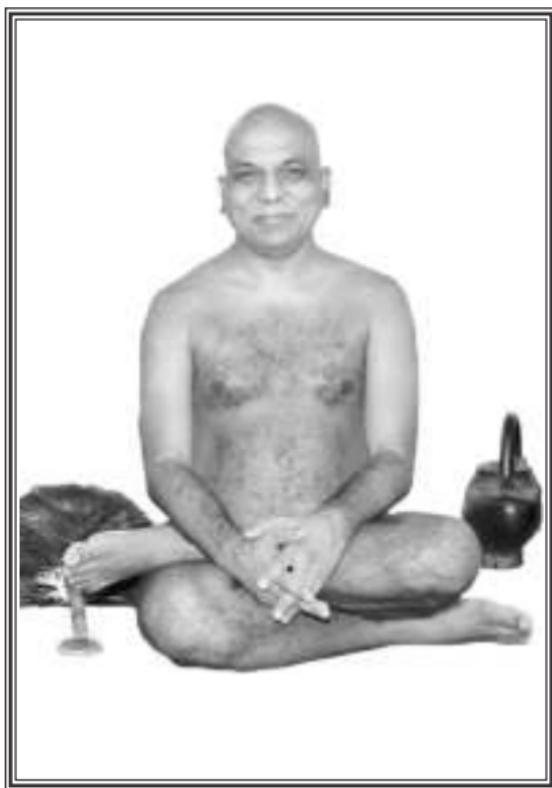
पुण्यार्जकः  
सरलादेवी-दीपचन्द जैन,  
रेखा-सनत जैन, अनुभा-सुधीर छावड़ा  
कोलकाता



प्रकाशकः  
श्री दिगम्बर जैन धर्म प्रभावना चातुर्मास समिति  
बावनगजा, बड़वानी (म.प्र.)



मुद्रकः  
विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स  
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल  
फोन : 0755-2601952, 9425005624

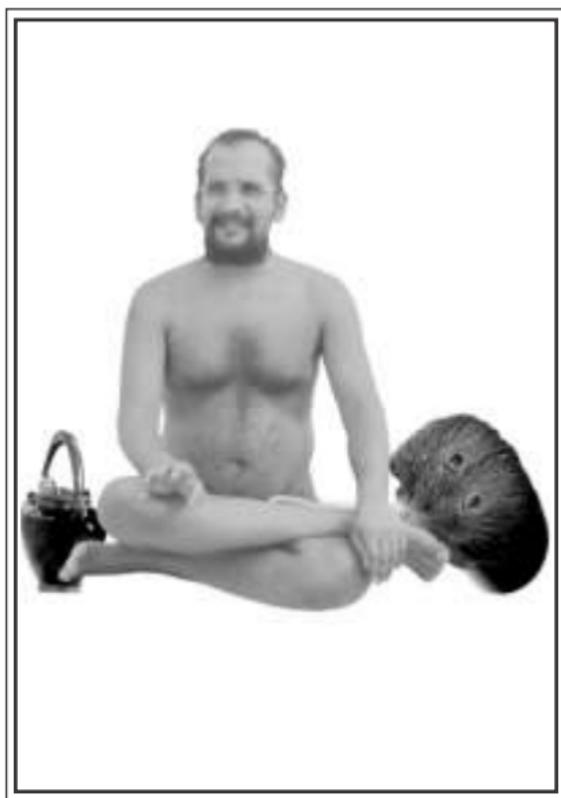


परम पूज्य मुनि श्री १०८ प्रमाणसागरजी महाराज

### आशीर्वचन

पर्युषण पर्व के अवसर पर  
तत्त्वार्थ सूत्र का पाठ के लिए श्रावकों में  
तत्त्वार्थ सूत्र के लघु संस्करण की  
आवश्यकता महसूस की जाती रही है।  
उसे ही ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत संस्करण  
को प्रकाशित कर प्रकाशक ने अनुकरणीय  
पहल की है। मेरा प्रकाशक बन्धुओं  
अनेकशः आशीर्वाद।

-मुनि प्रमाणसागर



परम पूज्य मुनि श्री १०८ विराटसागरजी महाराज

तत्त्वार्थ सूत्र



बा. ब्र. अशोक भैया जी

## प्रस्तुति

पर्युषण पर्व के अवसर पर श्रावक संस्कार शिविर का आयोजन आज की तिथि में जनता के बीच लोकप्रिय कार्यक्रम बन गया है। सभी के मन में वर्षभर इस आयोजन की प्रतीक्षा रहती है। इस वर्ष यह सौभाग्य श्री 1008 नेमिनाथ दिग्म्बर जैन मंदिर, हिरण्मगरी उदयपुर (राजस्थान) की सकल जैन समाज को प्राप्त हुआ है। संत शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद से उनके ही परम प्रभावक शिष्य प्रखर वक्ता, गुणायतन प्रणेता शिष्य मुनिश्री प्रमाणसागर जी एवं मुनिश्री विराटसागर जी के सान्निध्य में आयोजित उक्त कार्यक्रम में सुधीजनों के पाठ एवं परायण हेतु कृति के उपयोग को देखते हुए इसे प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है शिविरार्थियों एवं पाठकों के लिये यह कृति उपयोगी होगी। इसी विश्वास के साथ हम इसे समर्पित कर रहे हैं कृति के प्रकाशन में अपने द्रव्य का सदुपयोग कर झामकलाल टया, अर्चना-नेमीचन्द पटवारी, सौरभ-नुपुर, शशांक-कोमल, नायशा उदयपुर ने पुण्य लाभ लिया है, हम उन्हें साधुवाद देते हैं।

बा.ब्र. अशोक भैय्या

# तत्त्वार्थ सूत्र

( मोक्षशास्त्र )



ॐ

श्रीमद् उमास्वामि विरचितम्

तत्त्वार्थ सूत्र

( अर्थ सहित )

मंगलाचरण

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म भूभृताम् ।

ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वर्दे तदगुण लब्धये ॥

अर्थ- जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, जिन्होंने कर्म रूपी पर्वतों का भेदन किया है, और जो विश्व के समस्त तत्त्व अर्थात् मोक्षोपयोगी पदार्थों के पूर्ण ज्ञाता है उन परमात्मा की उनके जैसे गुणों की प्राप्ति के लिये मैं उनकी वंदना करता हूँ ।



सम्यगदर्शन आत्म विशुद्धि रूप होता है। यह वीतरागी मुनियों को ही होता है, क्योंकि यह वीतराग चारित्र का अविनाभावी है।

सम्यगदर्शन की उत्पत्ति कैसे होती है ?

तन्-निसर्गा-दधिगमाद्- वा ॥ 3 ॥

निसर्गज और अधिगमज के भेद से सम्यगदर्शन दो प्रकार का है। निसर्गज-पर उपदेश के बिना अपने आप होने वाला सम्यगदर्शन, अधिगमज-गुरु आदि के उपदेश से होने वाला सम्यगदर्शन।

तत्त्व कौन-कौन से हैं ?

जीवा-जीवास्त्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्-  
तत्त्वम् ॥ 4 ॥

जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

सम्यगदर्शन तथा तत्त्वों को कैसे जाना जाता है ?

नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्-तन्-न्यासः ॥ 5 ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव से उन सात तत्त्वों तथा सम्यगदर्शन आदि का न्यास (लोक व्यवहार) होता है।

**टिप्पणी-** नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये “निक्षेप” कहलाते हैं। जिसके द्वारा प्रासंगिक अर्थ का निरूपण और अप्रासंगिक अर्थ का निराकरण हो उसे निक्षेप कहते हैं।

जानने के और भी जो उपाय हैं उन्हें बताते हैं-

**प्रमाण-नयै-रधिगमः ॥ 6 ॥**

सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान, सम्यगचारित्र और जीवादि सात तत्त्वों का ज्ञान प्रमाण और नयों से होता है (सम्यगज्ञान को प्रमाण कहते हैं तथा प्रमाण से प्रकाशित पदार्थ का एकांश ज्ञान नय कहलाता है।)

**निर्देश-स्वामित्व-साधनाधि-करण-स्थिति-विधानतः ॥ 7 ॥**

निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इनके द्वारा भी जीवादि तत्त्व तथा सम्यगदर्शन

ज्ञान-चारित्र का ज्ञान होता है। (यह छः अनुयोग कहलाते हैं)

कुछ अन्य अनुयोगों के द्वारा भी ज्ञान होता है-

सत्-संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प  
बहुत्वैश्च ॥ 8 ॥

सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर (विरहकाल) भाव, और अल्पबहुत्व नाम के इन आठ अनुयोगों से भी जीवादि तत्त्वों आदि का ज्ञान होता है।

ज्ञान के कितने भेद हैं।

मति-श्रुतावधि-मनः पर्यय-केवलज्ञानि-ज्ञानम् ॥ 9 ॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच प्रकार के ज्ञान होते हैं।

ज्ञान की प्रमाणिकता क्या है ?

तत्प्रमाणे ॥ 10 ॥

ऊपर कहे गये मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञान ये पाँचों ही ज्ञान प्रमाण हैं। (जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप हैं)

प्ररोक्ष प्रमाण कौन से हैं ?

आद्ये परोक्षम् ॥ 11 ॥

पहले के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं (क्योंकि ये इन्द्रियों और मन की सहायता से होते हैं।)

प्रत्यक्ष-मन्यत् ॥ 12 ॥

शेष तीन अर्थात्, अवधि ज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। (क्योंकि ये ज्ञान पर निमित्त की अपेक्षा के बिना स्वयं आत्मा द्वारा होते हैं।)

मतिज्ञान के कुछ दूसरे नाम भी हैं-

मतिःस्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभि-निबोध

इत्य-नर्थान्तरम् ॥ 13 ॥

मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध इत्यादि मतिज्ञान के दूसरे नाम हैं।

मतिज्ञान कैसे पैदा होता है ?

तदिन्द्रिया-निन्द्रिय-निमित्तम् ॥ 14 ॥

वह मतिज्ञान पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है।

मतिज्ञान के मुख्य भेद कितने हैं ?

अवग्रहे-हावाय धारणाः ॥ 15 ॥

मतिज्ञान के अवग्रह (सामान्य अवलोकन), ईहा (जिज्ञासा), आवाय (निर्णय) और धारणा (स्मरणशक्ति) ये चार मुख्य भेद हैं।

मतिज्ञान के उत्तर भेद कितने हैं ?

बहु-बहुविध-क्षिप्रा-निः सृता-नुक्त-ध्रुवाणां  
सेतराणाम् ॥ 16 ॥

वह मतिज्ञान बहुत, बहुत प्रकार, क्षिप्र (शीघ्र), अनिःसृत (अप्रकट), अनुक्त (नहीं कहा हुआ), ध्रुव (स्थिर) तथा इन छहों के उल्टे प्रकार अर्थात्, एक, एक प्रकार, अक्षिप्र (धीमा), निःसृत (प्रकट), उक्त (कथित) और अध्रुव (अस्थिर) होता है।

(उपरोक्त 12 उत्तर भेद 15वें सूत्र में कहे गये मुख्य चारों भेदों के होते हैं, इसलिये  $12 \times 4 = 48$  भेद हुए। ये 48 भेद प्रत्येक इन्द्रिय और मन की सहायता से जाने जाते हैं इसलिये उनके साथ गुणित करने पर ( $48 \times 6 = 288$ ) मतिज्ञान के 288 भेद होते हैं।

**अर्थस्य ॥ 17 ॥**

ऊपर कहे गये बहु-बहुविध आदि अर्थ के विशेषण हैं। चक्षु इन्द्रिय आदि के विषय को अर्थ कहते हैं। अर्थ (वस्तु) के अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणा ये चारों मतिज्ञान होते हैं। मतिज्ञान के सम्बन्ध में और भी बताते हैं-

**व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥18 ॥**

व्यञ्जन पदार्थ (अर्थात् अव्यक्त अप्रगट रूप शब्दादि पदार्थों का) अवग्रह ज्ञान ही होता है। (ईहा, आवाय और धारणा रूप ज्ञान नहीं होते)। यह अवग्रह भी 12 भेदों सहित चक्षु और मन को छोड़ शेष चार इन्द्रियों से ही होता है। इस प्रकार व्यञ्जन अवग्रह मतिज्ञान के  $12 \times 4 = 48$

भेद होते हैं। पिछले 288 भेदों को जोड़ने पर मतिज्ञान के कुल भेद 336 हो जाते हैं।

न चक्षु-रनिन्द्रियाभ्याम् ॥ 19 ॥

चक्षु और मन के द्वारा व्यजन अवग्रह नहीं होता है।

अब श्रुतज्ञान के बारे में बताते हैं

श्रुतं मति पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-भेदम् ॥ 20 ॥

श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है और वह दो प्रकार का है अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट-अंगबाह्य अनेक भेदवाला और अंग प्रविष्ट बारह भेद वाला।

(अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट के भेद उपभेदों की विशेष जानकारी अवश्य करनी चाहिये, ताकि श्रुतज्ञान के विशाल क्षेत्र का परिज्ञान हो सके। यह जानकारी राजवार्तिक आदि उच्च ग्रन्थों के अध्ययन से मिल सकती है।)

अब अवधिज्ञान के विषय में बताते हैं-

भव प्रत्ययोऽवधि-देव-नारकाणाम् ॥ 21 ॥

भव की मुख्यता के कारण जन्म से ही होने वाला

अवधिज्ञान देव और नारकी जीवों के होता है।

(यह सभी देवों और नारकियों में समान नहीं होता। उनमें भी प्रकर्ष और अपकर्ष देखा जाता है, जो कि क्षयोपशम के कारण होता है। सम्यगदृष्टि देव और नारकियों के अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टियों के विभंगावधि ज्ञान होता है।)

क्षयोपशम के निमित्त से होने वाले अवधिज्ञान के बारे में और अधिक बताते हैं-

**क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्॥ 22 ॥**

क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकार का है। वह शेष जीवों अर्थात् तीर्यज्ञों एवं मनुष्यों को होता है। अवधि ज्ञान के छह भेद हैं-

**अनुगामी-** सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञाता का अनुगमन करने वाला ज्ञान।

**अननुगामी** - जो अवधिज्ञान क्षेत्रान्तर या भवान्तर में ज्ञाता का अनुगमन नहीं करता।

**वर्धमान** - शुक्ल पक्ष की चन्द्रकलाओं की तरह अपनी अन्तिम सीमा तक निरन्तर बढ़ने वाला ज्ञान ।

**हीयमान-कृष्णपक्ष** की चन्द्रकलाओं की तरह निरन्तर घटते रहने वाला अवधिज्ञान ।

**अवस्थित-** केवलज्ञान होने तक सदा एक सा रहने वाला अवधिज्ञान ।

**अनवस्थित-** सम्यग्दर्शन आदि गुणों की वृद्धिहानि की अपेक्षा घटते-बढ़ते रहने वाला ज्ञान ।

देशावधि, परमावधि और सर्वावधि के भेद से अवधिज्ञान के तीन भेद भी होते हैं । उपयुक्त छहों भेद देशावधि के होते हैं । परमावधि और सर्वावधि अवधिज्ञान तद्भव मोक्षगामी वर्धमान चारित्री महामुनियों को ही होता है । अतः परमावधि हीयमान नहीं होता ।

सर्वावधि में अवस्थित अनुगामी और अननुगामी (भव की अपेक्षा) ये तीन भेद ही होते हैं ।

अब मनःपर्यय ज्ञान के बारे में बताते हैं-

**ऋजु-विपुलमती मनः पर्ययः ॥ 23 ॥**

मनः पर्यय ज्ञान के दो भेद हैं-ऋजुमति और विपुलमति।

इन दोनों में क्या अन्तर है ?

**विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्-विशेषः ॥ 24 ॥**

विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में अन्तर हैं। विशुद्धि-आत्मा की निर्मलता। अप्रतिपात-गिरना प्रतिपात है, नहीं गिरना अप्रतिपात है। ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति ज्ञान अधिक विशुद्धतर है तथा ऋजुमति प्रतिपाती है(उत्पन्न होकर छूट भी सकता है।)

विपुलमति अप्रतिपाती है उत्पन्न होकर केवलज्ञान होने तक नहीं छूटता है।

अवधि और मनःपर्यय ज्ञान में क्या अन्तर है ?

**विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनः**

**पर्यययोः ॥ 25 ॥**

अवधि और मनः पर्यय ज्ञान में विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अन्तर है। (अवधिज्ञान से

मनः पर्यय ज्ञान विशुद्ध है, लेकिन अवधिज्ञान का क्षेत्र अधिक है। मनः पर्ययज्ञान के स्वामी विशिष्ट संयम वाले मनुष्य ही होते हैं। अवधिज्ञान चारों ही गति में होता है।)

मति और श्रुतज्ञान के विषय क्या हैं ?

मति-श्रुतयो-र्निबन्धो-द्रव्येष्व-सर्व-पर्यायेषु ॥ 26 ॥

छह द्रव्यों (जीव, अजीव, धर्म, अर्धम, आकाश और काल) की कुछ पर्यायों को जान लेना मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय है।

अवधिज्ञान का विषय क्या है ?

रूपिष्व वधेः ॥ 27 ॥

अवधिज्ञान का विषय मूर्त पदार्थ अथवा उससे सम्बन्धित जीव की पर्यायों को जानना है।

मनः पर्यय ज्ञान का विषय क्या है ?

तदनन्त-भागे मनः पर्ययस्य ॥ 28 ॥

सर्वावधि ज्ञान के द्वारा जाने गये द्रव्य के अनन्तवें भाग को मनः पर्यय ज्ञान जानता है।

केवलज्ञान का विषय क्या है ?

सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य ॥ 29 ॥

केवलज्ञान का विषय समस्त द्रव्य और उनकी सम्पूर्ण पर्यायें हैं ।

एक जीव को एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

एकादीनि भाज्यानि युगपदे-कस्मिन्ना-  
चतुर्भ्यः ॥ 30 ॥

एक जीव में एक साथ कम से कम एक और अधिक से अधिक चार ज्ञान हो सकते हैं । (एक होगा तो वह केवलज्ञान होगा । दो होंगे तो मति, श्रुत होंगे । तीन होंगे तो मतिश्रुत अवधि अथवा मतिश्रुत मनः पर्यय होंगे । चार होंगे तो मतिश्रुत अवधि और मनः पर्यय होंगे ।

कुमति, कुश्रुत और कुअवधि क्या होते हैं ?

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ 31 ॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये विपरीत भी होते हैं । (मिथ्यादर्शन के उदय से ये ज्ञान मिथ्याज्ञान

कहलाते हैं। मिथ्याज्ञान के द्वारा जीव पदार्थों को विपरीत रूप से जानता है।)

मिथ्याज्ञान सम्यक्ज्ञान से कैसे भिन्न हैं ?

सद-सतो-रविशेषाद्-यदृच्छोप-लब्धे-  
रुन्मत्तवत् ॥ 32 ॥

विद्यमान और अविद्यमान पदार्थ को विशेषता के बिना अपनी इच्छानुसार जानने के कारण मिथ्यादृष्टि का ज्ञान उन्मत्त अर्थात् पागल पुरुष के ज्ञान की तरह है। (जैसे पागल कभी माता को भार्या और भार्या को माता समझता है और कभी माता को माता और भार्या को भार्या ही समझता है, लेकिन उसका ज्ञान ठीक नहीं है क्योंकि वह माता और भार्या के भेद को नहीं जानता है।)

नय कितने प्रकार के होते हैं ?

नैगम-संग्रह-व्यवहार-र्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढै-  
वंभूता नयाः ॥ 33 ॥

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं। (द्रव्य या पर्याय की अपेक्षा

से किसी एक धर्म के कथन करने को नय कहते हैं। उक्त नय परस्पर सापेक्ष होकर ही सम्यगदर्शन के कारण होते हैं। जैसे तन्तु परस्पर सापेक्ष होकर ही वस्त्र रूप परिणत होकर वस्त्र का कार्य करते हैं। पृथक पृथक रहकर तन्तु जैसे वस्त्र का कार्य नहीं कर सकते, वैसे परस्पर नय भी अर्थ क्रिया नहीं कर सकते हैं।)

---

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

## द्वितीय अध्याय

जीव के असाधारण भाव कौन-कौन से हैं ?

औपशमिक-क्षायिकौ-भावौ मिश्रश्च जीवस्य  
स्वतत्त्व-मौदयिक-परिणामिकौ च ॥ 1 ॥

जीव के अपने निज के पाँच असाधारण भाव हैं  
जिन्हें औपशमिक, क्षायिक, मिश्र अथवा क्षायोपशमिक,  
औदयिक और परिणामिक भाव कहते हैं।

इन असाधारण भावों के कितने भेद हैं ?

द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा  
यथा-क्रमम् ॥ 2 ॥

औपशमिक के दो, क्षायिक के नौ, मिश्र अथवा  
क्षायोपशमिक के अठारह, औदयिक के इककीस तथा  
परिणामिक के 3 भेद हैं।

औपशमिक भाव के दो भेद-  
सम्यक्त्व-चारित्रे ॥ 3 ॥

औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भाव के भेद हैं।

क्षायिक भाव के नौ भेद -

ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-

वीर्याणि च ॥ 4 ॥

ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य तथा सम्यक्त्व और चारित्र ये नौ क्षायिक भाव के भेद हैं।

क्षायोपशमिक (मिश्र) भाव के अठारह भेद

ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-लब्ध्यश्च-चतुस्-त्रि-त्रि-पञ्च

भेदाः सम्यक्त्व चारित्र-संयमा-संयमाश्च ॥ 5 ॥

4 क्षायोपशमिक ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय), 3 क्षायोपशमिक अज्ञान (कुमति, कुश्रुत और कुअवधि), 3 क्षायोपशमिक दर्शन (चक्षु, अचक्षु और अवधि), 5 क्षायोपशमिक लब्ध्याँ (दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य) तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयासंयम ये 18 क्षायोपशमिक भाव के भेद हैं।

औदयिक भाव के इक्कीस भेद-  
 गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयता-  
 सिद्ध-लेश्याश-चतुश-चतुस्-त्र्ये-कै-कै-  
 कैक-षड् भेदाः ॥ 6 ॥

4 गतियाँ, 4 कषायें, 3 लिंग (वेद), मिथ्या दर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और 6 लेश्यायें ये 21 औदयिक भाव के भेद हैं।

पारिणामिक भाव के दो भेद -

जीव-भव्या-भव्यत्वानि च ॥ 7 ॥

जीवत्व-भव्यत्व और अभव्यत्व ये 3 पारिणामिक भाव के भेद हैं।

टिप्पणी- सूत्र में दिये गये 'च' शब्द से अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व आदि भावों को ग्रहण किया गया है अर्थात् ये भी परिणामिक भाव हैं, किन्तु ये भाव अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं। इसलिये जीव के असाधारण भाव न होने से सूत्र में इन भावों को नहीं कहा है।

जीव का लक्षण क्या है ?

उपयोगो लक्षणम् ॥ 8 ॥

टिप्पणी- उपयोग जीव का लक्षण है। आत्मा के चैतन्य गुणों का अनुसरण करनेवाले परिणाम को उपयोग कहते हैं अथवा आत्मा अपनी जिस चेतन शक्ति के द्वारा जानता और देखता है, उसे उपयोग कहते हैं।

उपयोग के कितने भेद हैं? यह बताते हैं-

स द्वि-विधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥ 9 ॥

वह उपयोग मूलरूप से ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के भेद से 2 प्रकार का है। ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं, यथा-मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल, कुमति, कुश्रुत और कुअवधि। दर्शनोपयोग के चार भेद हैं यथा चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन।

जीव कितने प्रकार के होते हैं ?

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ 10 ॥

संसारी और मुक्त के भेद से जीव दो प्रकार के हैं।

संसारी जीव के कितने भेद हैं ?

समनस्काऽमनस्काः ॥ 11 ॥

संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं- समनस्क (मन सहित) और अमनस्क (मन रहित)। इन्हें सैनी, असैनी भी कहते हैं।

संसारिणस्-त्रस्-स्थावराः ॥ 12 ॥

संसारी जीवों के त्रस और स्थावर के भेद से भी दो भेद हैं।

स्थावर के कितने भेद हैं ?

पृथि-व्यप्-तेजो वायु वनस्पतयः स्थावराः ॥ 13 ॥

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेज (अग्नि) कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव होते हैं।

त्रस जीवों के भेद-

द्वीन्द्रियादयस्-त्रसाः ॥ 14 ॥

दो इन्द्रिय (शंख, सीप, जोंक, लट आदि) तीन इन्द्रिय (बिच्छू, चींटी, खटमल, जूँ आदि) चार इन्द्रिय

(मक्खी, भौंरा, मकड़ी आदि) और पाँच इन्द्रिय (कुत्ता, बिल्ली, गाय, भैंस, मनुष्य आदि) जीव त्रस कहलाते हैं।

इन्द्रियाँ कितनी होतीं हैं ?

पञ्चेन्द्रियाणि ॥ 15 ॥

स्पर्शन, रसना, ध्राण, चक्षु और कर्ण (कान) के भेद से इन्द्रियाँ पाँच होती हैं।

इन्द्रियों के कितने भेद हैं ?

द्वि-विधानि ॥ 16 ॥

द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद से प्रत्येक इन्द्रिय के दो-दो भेद होते हैं।

द्रव्येन्द्रिय का क्या स्वरूप है ?

निर्वृत्युप-करणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ 17 ॥

निर्वृत्ति (आकार विशेष में पुद्गल की रचना) तथा उपकरण (आँखों की पलक वरौनी आदि) को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इनमें से प्रत्येक के अभ्यन्तर और बाह्य के भेद से दो-दो भेद हैं।

भावेन्द्रिय का स्वरूप-

लब्ध्युप-योगौ भावेन्द्रियम् ॥ 18 ॥

लब्धि (अर्थ ग्रहण करने की शक्ति) और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं।

पाँच इन्द्रियों के नाम क्या हैं ?

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि ॥ 19 ॥

पाँच इन्द्रियों के नाम हैं-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

इन्द्रियों के विषय

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्-तदर्थाः ॥ 20 ॥

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रमशः ऊपर बताई गई पाँचों इन्द्रियों के विषय हैं।

मन का विषय

श्रुत-मनिन्द्रियस्य ॥ 21 ॥

श्रुत (श्रुतज्ञान) मन का विषय है।

---

तत्त्वार्थ सूत्र  
इन्द्रियों के स्वामी

वनस्पत्यन्ताना-मेकम् ॥ 22 ॥

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-  
वृद्धानि ॥ 23 ॥

कृमि आदि के 2, चींटी आदि के 3, भ्रमर आदि के 4 और मनुष्य आदि के 5 इस प्रकार क्रम से एक-एक इन्द्रिय बढ़ती हुई हैं।

संज्ञी जीव का लक्षण

संज्ञिनः समनस्काः ॥ 24 ॥

मन सहित जीव संज्ञी कहे जाते हैं।

टिप्पणी-अन्य शब्दों में मन रहित जीव असंज्ञी कहलाते हैं। संज्ञियों के शिक्षा और शब्दार्थ ग्रहण आदि क्रिया होती है।

विग्रह गति में बिना मन की सहायता के गमन कैसे होता है ?

इसका उत्तर है-

**विग्रह-गतौ कर्म-योगः ॥ 25 ॥**

मृत्युपरान्त नूतन शरीर की प्राप्ति के लिए होनेवाली गति को विग्रहगति कहते हैं। विग्रहगति में कार्माण काययोग होता है।

गमन किस प्रकार होता है ?

**अनुश्रेणि गतिः ॥ 26 ॥**

जीव और पुद्गल का गमन आकाश के प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार होता है।

मुक्त जीव का गमन कैसे होता है ?

**अविग्रहा जीवस्य ॥ 27 ॥**

मुक्त हुये जीव की गति ऊपर को सीधे विग्रह रहित अर्थात् बिना मोड़ के होती है।

आगे संसारी जीवों की गति और समय बताते हैं-

**विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ 28 ॥**

संसारी जीव की गति मोड़ा सहित और मोड़ा रहित दोनों प्रकार की होती हैं और इसका समय चार समय से पहले तक अर्थात् तीन समय तक का है। संसारी जीव चौथे समय में कहीं न कहीं अवश्य उत्पन्न हो जाता है।

विग्रह रहित गति का समय-

**एक समयाविग्रहा ॥ 29 ॥**

मोड़ा रहित गति का काल एक समय है। इसको 'ऋजुगति' भी कहते हैं।

**एकं द्वौ-त्रीन्-वा-नाहारकः ॥ 30 ॥**

विग्रहगति में जीव एक, दो या तीन समय तक अनाहारक रहता है।

**टिप्पणी-** औदारिक, वैक्रियक और आहारक शरीर तथा छह पर्यासियों के योग्य पुद्गल परमाणुओं के ग्रहण को आहार कहते हैं। इस प्रकार का आहार जिसके न हो

वह अनाहारक कहलाता है। विग्रह रहित गति में जीव आहारक होता है।

जन्म के प्रकार-

### सम्मूच्छ्न गर्भोपपादा जन्म ॥ 31 ॥

संसारी जीवों का जन्म तीन प्रकार से होता है। पहला-सम्मूच्छ्न (माता-पिता के संयोग के बिना सब और से पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण कर शरीर रूप परिणत हो जाना), दूसरा गर्भ (माता-पिता के रज-वीर्य के संयोग से होने वाला जन्म) और तीसरा उपपाद (जहाँ पहुँचते ही सम्पूर्ण अंगों की रचना हो जाये)

अब योनियों के भेद बताते हैं-

### सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश-चैकशस्- तद्-योनयः ॥ 32 ॥

सचित्त, शीत, संवृत (ढकी हुई), अचित्त, उष्ण, विवृत (खुली हुई) और सचित्ताचित्त, शीतोष्ण संवृतविवृत ये नौ सम्मूच्छ्न आदि जन्मों की योनियाँ हैं।

गर्भ जन्म किसका होता है ?

जरायु-जाण्डज पोतानां गर्भः ॥ 33 ॥

जरायुज (जैसे मनुष्य), अण्डज (अण्डों से उत्पन्न होने वाले) तथा पोत (जो पैदा होते ही परिपूर्ण शरीर युक्त हों, चलने फिरने लग जावें और जिन पर गर्भ में कोई आवरण न रहता हो) इन जीवों के गर्भ जन्म होता है।

उपपाद जन्म किसके होता है ?

देव-नारकाणा-मुपपादः ॥ 34 ॥

देव और नारकियों के उपपाद जन्म होता है।

सम्मूच्छ्वन जन्म किसके होता है ?

शेषाणां सम्मूच्छ्वनम् ॥ 35 ॥

गर्भ और उपपाद जन्म वालों से अतिरिक्त शेष जीवों का सम्मूच्छ्वन जन्म होता है।

शरीर कितने प्रकार के होते हैं ?

औदारिक-वैक्रियि-काहारक-तैजस-कार्मणानि  
शरीराणि ॥ 36 ॥

इन सभी जीवों के

औदारिक- मनुष्य तिर्यङ्गों का स्थूल शरीर,

वैक्रियिक-देव-नारकियों का स्थूल शरीर,

आहारक-छठें गुणस्थानवर्ती ऋषिद्वि सम्पन्न मुनिराज  
की शंका निवारणार्थ निकलनेवाला शरीर,

तैजस- स्थूल शरीरों के कान्ति, उष्मा और प्रकाश  
उत्पन्न करनेवाला शरीर,

कार्मण-संस्कार शरीर या सूक्ष्म शरीर।

ये पाँच प्रकार के शरीर होते हैं ।

इनमें कौन से शरीर सूक्ष्म होते हैं ?

परं परं सूक्ष्मम् ॥ 37 ॥

उक्त पाँचों शरीर में पूर्व की अपेक्षा आगे आगे के  
शरीर सूक्ष्म हैं-अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक सूक्ष्म है  
इत्यादि ।

अब शरीर के प्रदेशों के बारे में आचार्य श्री कहते हैं-

प्रदेशतोऽसंख्येय-गुणं प्राक्-तैजसात् ॥ 38 ॥

तैजस शरीर से पहले के तीन शरीर अर्थात् औदारिक

वैक्रियक और आहारक में पहले की अपेक्षा अगले में  
असंख्यात् गुणे प्रदेश हैं।

अनन्त-गुणे परे ॥ 39 ॥

अन्त के दो शरीर अर्थात् तैजस और कार्माण  
अनन्तगुणे परणामु वाले होते हैं अर्थात् आहारक शरीर से  
तैजस शरीर में अनन्त गुणे प्रदेश होते हैं।

तैजस और कार्माण शरीर की विशेषता

अप्रतीघाते ॥ 40 ॥

तैजस और कार्माण ये दोनों ही शरीर लोक पर्यन्त  
प्रतिघातरहित हैं अर्थात् ये न तो मूर्तिक पदार्थ से स्वयं  
रुकते हैं और न किसी को रोकते हैं।

अनादि-सम्बन्धे च ॥ 41 ॥

तैजस और कार्माण शरीर आत्मा के साथ (सन्तति  
की अपेक्षा) अनादि काल से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

सर्वस्य ॥ 42 ॥

उक्त दोनों शरीर सब संसारी जीवों के होते हैं।

एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं ?  
तदादीनि भाज्यानि युगपदे-कस्मिन्ना-  
चतुर्भ्यः ॥ 43 ॥

एक जीव के कम से कम दो अर्थात् तैजस और कार्मण और अधिक से अधिक चार शरीर हो सकते हैं । (तीन हों तो तैजस, कार्मण और औदारिक अथवा तैजस, कार्मण और वैक्रियक, चार हों तो तैजस, कार्मण, औदारिक और आहारक । एक साथ पाँच शरीर नहीं हो सकते ।)

कार्मण शरीर की विशेषता क्या है ?

निरुपभोग-मन्त्यम् ॥ 44 ॥

अन्त का 'कार्मण' शरीर उपभोग रहित है ।

औदारिक शरीर किनका होता है ?

गर्भ-सम्मूच्छ्वन्नज-माद्यम् ॥ 45 ॥

गर्भ और सम्मूच्छ्वन्न से जन्म लेने वाले जीव (तैजस और कार्मण शरीर सहित) औदारिक शरीरधारी होते हैं ।

वैक्रियक शरीर किनके होते हैं ?

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ 46 ॥

उपपाद जन्म से उत्पन्न होने वाले शरीर (तैजस और कार्माण शरीर सहित) वैक्रियक शरीरधारी होते हैं।

लब्धि-प्रत्ययं -च ॥ 47 ॥

वैक्रियक शरीर लब्धिजन्य भी है अर्थात् विशेष तप द्वारा भी प्राप्त होता है।

तैजस-मपि ॥ 48 ॥

तैजस शरीर भी लब्धि से अर्थात् ऋद्धि के निमित्त से प्राप्त हो जाता है।

टिप्पणी-तैजस शरीर निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक के भेद से दो प्रकार का होता है। शुभ और अशुभ दो भेदों वाला निस्सरणात्मक तैजस मुनियों को ही होता है। शुभ तैजस करुणापूरित मुनि के दाँए कन्धे से निकलकर बारह योजन तक सुभिक्ष और शान्ति करता है तथा अशुभ तैजस किसी निमित्त से क्रोध को प्राप्त

महामुनि के बाँए कन्धे से निकलकर अपने वैरी का संहार कर मुनि के शरीर में वापस लौट जाता है और अधिक देर ठहर जाए तो मुनि के शरीर को भी भस्म कर देता है। अनिस्सरणात्मक तैजस सभी संसारी जीवों को होता है। यहि औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों में कान्ति, उष्मा और प्रकाश उत्पन्न करता है।

आहारक शरीर के लक्षण क्या हैं ?

**शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त  
संयतस्यैव ॥ 49 ॥**

आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित होता है और वह केवल प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है।

**लिंग ( वेद ) के स्वामी-  
नारक-सम्मूच्छ्वनो नपुंसकानि ॥ 50 ॥**

नारकी और सम्मूच्छ्वन जीव नपुंसक लिंगी होते हैं।  
**न-देवाः ॥ 51 ॥**

देवों के नपुंसकलिंग नहीं होता है। केवल स्त्री लिंग और पुरुष लिंग ही होता है।

शेषास्-त्रिवेदाः ॥ 52 ॥

शेष जीवों के तीन ही लिंग होते हैं ।

अकाल मरण किनके नहीं होते ?

औपपादिक-चरमोत्तम-देहा-संख्येय-  
वर्षायुषोऽनप-वर्त्यायुषः ॥ 53 ॥

उपपाद जन्म लेने वाले (देव और नारकी) चरमोत्तम शरीर वाले (अर्थात् तद्भव मोक्षगामी तीर्थकर परमदेव), असंख्यात् वर्ष की आयु वाले (भोग भूमिज मनुष्य-तिर्यज्ञों की) अकाल मृत्यु नहीं होती ।

टिप्पणी - इससे सिद्ध होता है कि अन्य जीवों का अकाल मरण होता है । यदि अन्य जीवों का अकाल मरण न हो तो दया, धर्मोपदेश, और चिकित्सा आदि बातें निर्थक हो जायेंगी ।

---

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ 2 ॥

---

## तृतीय अध्याय

अधोलोक का वर्णन

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो महातमः प्रभा-  
भूमयो घनाम्बु-वाताकाश-प्रतिष्ठाः  
सप्ताधोऽधः ॥ 1 ॥

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्क प्रभा, धूम प्रभा, तमः प्रभा और महातमः प्रभा, ये सात भूमियाँ घनवात, अम्बुवात और तनुवात नाम की तीन वातवलियों (वायु की पट्टियों) से वेष्टित होकर क्रम से नीचे-नीचे स्थित हैं।

तासु त्रिंशत्-पञ्च-विंशति पञ्चदश-दश त्रि-  
पञ्चोनैक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च  
चैव यथाक्रमम् ॥ 2 ॥

इन सात नरक भूमियों में जो रहने के स्थान हैं, उन्हें नरक बिल कहते हैं। ऐसे नरक बिल प्रथम नरक भूमि में 30 लाख हैं, दूसरे में 25 लाख हैं, तीसरे में 15 लाख हैं, चौथे में 10 लाख हैं। पाँचवें में 3 लाख हैं, छठवें

में पाँच कम 1 लाख हैं और सातवें में केवल 5 बिल हैं।  
सम्पूर्ण बिलों की संख्या 85 लाख है।

**नारका नित्या-शुभतर-लेश्या-परिणाम  
देह-वेदना-विक्रियाः ॥ 3 ॥**

नरक में रहने वाले जीवों की लेश्या, परिणाम,  
देह, वेदना और विक्रिया नित्य ही अशुभतर होती है।

**परस्परो-दीरित दुःखाः ॥ 4 ॥**

नारकी जीव परस्पर में एक-दूसरे को दुःख पहुँचाते हैं।  
**संक्लिष्टा-सुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक्-चतुर्थ्याः ॥ 5 ॥**

चौथी नरक भूमि से पहले की तीन नरक भूमियों  
में संक्लिष्ट परिणामधारी असुरकुमारों द्वारा भी नारकियों  
को दुःख पहुँचाया जाता है।

**तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्-  
त्रिंशत्-सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ 6 ॥**

उन नरकों में नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयु क्रम  
से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह  
सागर, बाईस सागर और तैन्तीस सागर है।

**टिप्पणी-**‘इन नरकों में मद्यपायी, मांसभक्षी, पशुबलि देने वाले, असत्यवादी, पर द्रव्य का हरण करने वाले, परस्त्री लम्पटी, तीव्र लोभी, रात्रि में भोजन करने वाले, स्त्री-बालक-वृद्ध और ऋषि के साथ विश्वासघात करने वाले, जिन धर्म निन्दक, रौद्र ध्यान करने वाले तथा इसी प्रकार के अन्य पाप करने वाले जीव पैदा होते हैं।

उत्पत्ति के समय इन जीवों के ऊपर की ओर पैर और मस्तक नीचे की ओर रहता है। नारकी जीवों को क्षुधा, तृष्णा आदि की वेदना आयु पर्यन्त सहन करनी पड़ती है। क्षण भर के लिये भी सुख नहीं मिलता है।’

‘असंज्ञी जीव प्रथम नरक तक, सरीसृप (रँगने वाले) द्वितीय नरक तक, पक्षी तृतीय नरक तक, सर्प चतुर्थ नरक तक, सिंह पाँचवें नरक तक, स्त्री छठवें नरक तक, और मत्स्य और मनुष्य सातवें नरक तक जाते हैं।’

‘यदि कोई प्रथम नरक में लगातार जाये तो आठ बार जा सकता है अर्थात् कोई प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ,

फिर वह निकलकर मनुष्य या तिर्यञ्च हुआ, पुनः प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह प्रथम नरक में ही जाता रहे तो आठ बार तक जा सकता है। इसी प्रकार द्वितीय नरक में सात बार, तृतीय नरक में छह बार, चौथे नरक में पाँच बार, पाँचवें नरक में चार बार, छठवें नरक में तीन बार और सातवें नरक में दो बार तक लगातार उत्पन्न हो सकता है।'

सातवें नरक से निकला हुआ जीव तिर्यञ्च ही होता है और पुनः नरक में जाता है। छठवें नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य भी हो सकता है और सम्यगदर्शन तथा संयमासंयम को प्राप्त कर सकता है। पंचम नरक से निकला जीव महाब्रती हो सकता है। चौथे नरक से निकला हुआ जीव मुनि बनकर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय नरक से निकला हुआ जीव तीर्थकर भी हो सकता है। इस प्रकार अधोलोक का वर्णन संक्षेप में पूरा हुआ।

अब मध्यलोक का वर्णन करते हैं-

जम्बूद्वीप-लवणो-दादयःशुभ-नामानो द्वीप-  
समुद्राः ॥ 7 ॥

मध्यलोक में जम्बूद्वीप तथा लवणोद आदि शुभनाम वाले असंख्यात् द्वीप समुद्र हैं।

**टिप्पणी-** (1) जम्बूद्वीप लवणोद समुद्र (2) धातकी खण्ड द्वीप-कालोदधि समुद्र (3) पुष्करवर द्वीप-पुष्करवर समुद्र (4) वारुणीवर द्वीप-वारुणीवर समुद्र (5) क्षीरवर द्वीप-क्षीरवर समुद्र (6) घृतवर द्वीप-घृतवर समुद्र (7) इक्षुवर द्वीप-इक्षुवर समुद्र (8) नन्दीश्वर द्वीप-नन्दीश्वर समुद्र (9) अरुणवर द्वीप-अरुणवर समुद्र। इस प्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त एक दूसरे को धेरे हुए असंख्यात् द्वीप और समुद्र हैं।

इन द्वीप-समुद्रों की रचना कैसी है ? बताते हैं-

द्वि-द्वि-र्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलया-  
कृतयः ॥ 8 ॥

प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने-दूने विस्तार वाले एक दूसरे

को घेरे हुये तथा चूड़ी के आकार वाले गोल हैं।

अब जम्बूद्वीप की रचना और विस्तार बताते हैं-  
तन्‌मध्ये मेरु-नाभि-वृत्तो योजन-शत-सहस्र  
विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ 9 ॥

इन द्वीप समुद्रों के मध्य में एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्य में नाभि के समान सुमेरु पर्वत है।

जम्बूद्वीप के क्षेत्रों का वर्णन-  
भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्य-वतैरावत-  
वर्षाः क्षेत्राणि ॥ 10 ॥

इस जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

इन क्षेत्रों के बीच में क्या है ?

तद् विभाजिनः पूर्वा-परायता हिमवन्-महाहिमवन्-  
निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ॥ 11 ॥

ऊपर कहे गये सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले पूर्व

से पश्चिम तक फैले हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मिन् और शिखरिन् नाम वाले 6 कुलाचल पर्वत हैं।

इन कुलाचल पर्वतों का वर्ण कैसा है ?

हेमार्जुन-तपनीय-वैदूर्य-रजत-हेममयाः ॥ 12 ॥

हिमवन् पर्वत का रंग सोने के समान है। महाहिमवन् का रंग चाँदी के समान है। निषध पर्वत का रंग तपे हुये सोने के समान लाल है। नील पर्वत का रंग वैदूर्यमणि के समान नीला है। रुक्मिन् पर्वत का रंग चाँदी के समान सफेद है और शिखरिन् पर्वत का रंग सोने के समान पीला है।

अब इन पर्वतों का आकार बताते हैं-

मणि-विचित्र-पार्श्वा-उपरि मूले च तुल्य-  
विस्ताराः ॥ 13 ॥

कई तरह की मणियों से शोभित तट वाले इन पर्वतों का ऊपर नीचे मध्य में एक समान विस्तार है।

पर्वतों पर स्थित सरोवरों का वर्णन  
पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केशरि-महा-पुण्डरीक-  
पुण्डरीका हृदास्-तेषामुपरि ॥ 14 ॥

हिमवन् आदि पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म,  
तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये 6 सरोवर हैं।

प्रथम सरोवर का आकार कैसा है ?

प्रथमो योजन-सहस्रायामस्-तदद्व्य-  
विष्कम्भो हृदः ॥ 15 ॥

हिमवन् पर्वत के ऊपर स्थित प्रथम सरोवर एक  
हजार योजन लम्बा और पाँच सौ योजन चौड़ा है।

दश-योजनाव-गाहः ॥ 16 ॥

पद्म नाम का प्रथम सरोवर दस योजन गहरा है।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ 17 ॥

उसके मध्य में एक योजन विस्तार का कमल है।

अन्य सरोवरों का आकार कैसा है ?

तद्-द्वि-गुण-द्वि-गुणा-हृदाः पुष्कराणि च ॥ 18 ॥

आगे के सरोवर तथा उनके कमल पहले सरोवर के और उसके कमल की लंबाई-चौड़ाई और गहराई विस्तार की अपेक्षा दूने-दूने आकार वाले हैं।

कमलों पर निवासिनी 6 देवियाँ-  
तन्-निवासिन्यो देव्यः श्री ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-  
लक्ष्म्यः पल्योपम-स्थितयः  
ससामानिक परिषत्काः ॥ 19 ॥

उन पद्म आदि सरोवरों के कमलों पर क्रम से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छह देवियाँ सामानिक और पारिषद जाति के देवों के साथ निवास करती हैं। इन देवियों की आयु एक पल्य है।

सात क्षेत्रों की नदियों का वर्णन  
गङ्गा-सिंधु-रोहिणो-हितास्या- हरिद्वरि -कान्ता-  
सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रुप्य-कूला-  
रक्ता रक्तोदाः सरितस्-तन्-मध्यगाः ॥ 20 ॥

भरत आदि सात क्षेत्रों में गंगा, सिंधु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता,

सुवर्णकूला, रूप्य कूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियाँ  
बहती हैं।

नदियों के बहने का क्रम

द्वयो द्व्ययोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ 21 ॥

ऊपर कही गई नदियों को क्षेत्र के क्रमानुसार दो-  
दो के युगल में लेना चाहिए। प्रत्येक युगल की प्रथम नदी  
पूर्व दिशा में बहकर समुद्र में गिरती है।

शेषास्-त्व-परगाः ॥ 22 ॥

बाकी बची हुई सात नदियाँ पश्चिम की ओर जाती हैं।

सहायक नदियों का वर्णन

चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता-गङ्गा सिन्ध्वादयो-  
न्द्यः ॥ 23 ॥

गंगा सिन्धु आदि नदियों के युगल चौदह हजार  
सहायक नदियों सहित हैं।

आगे के पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार-  
भरतः षड्-विंशति-पञ्च-योजन-शत-विस्तारः  
षट्-चैकोन-विंशति-भागा योजनस्य ॥ 24 ॥

भरत क्षेत्र का विस्तार 526 योजन है।

आगे के पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार-  
तद्-द्वि-गुण-द्वि-गुण-विस्तारा वर्षधर- वर्षा  
विदेहान्ताः ॥ 25 ॥

विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र, भरत क्षेत्र से  
दूने-दूने विस्तार वाले हैं।

उत्तरा-दक्षिण-तुल्याः ॥ 26 ॥

विदेह क्षेत्र पर्यन्त उत्तर के तीन पर्वत और तीन क्षेत्र  
दक्षिण के पर्वत और क्षेत्रों के विस्तार के समान हैं।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल परिवर्तन-  
भरतैरावतयो-वृद्धि-हासौ षट्-समयाभ्या  
मुत्सर्पिण्य-वसर्पिणीभ्याम् ॥ 27 ॥

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह कालों द्वारा

भरत और ऐरावत क्षेत्रों में रहने वाले मनुष्यों की आयु, अनुभव, शरीर की ऊँचाई, भोगोपभोग में वृद्धि और हानि होती रहती है।

अन्य भूमियों का वर्णन

ताभ्या-मपरा-भूमयोऽवस्थिताः ॥ 28 ॥

भरत और ऐरावत क्षेत्र को छोड़कर शेष पाँच क्षेत्र में स्थिति ज्यों की त्यों नित्य एक सी रहती है। उनमें काल का परिवर्तन नहीं होता है।

हैमवत आदि क्षेत्रों में आयु का वर्णन  
एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हैमवतक  
हारिवर्षक-दैव-कुरवकाः ॥ 29 ॥

हैमवत, हरिक्षेत्र और देवकुरु (विदेह क्षेत्र के दक्षिण में विशेष स्थान) में क्रमशः प्राणियों की आयु एक पल्य, दो पल्य, और तीन पल्य की है। (शरीर की ऊँचाई क्रमशः 2 हजार, 4 हजार और 6 हजार धनुष की है। भोजन क्रमशः 1 दिन बाद, 2 दिन बाद और 3 दिन बाद

करते हैं। शरीर का रंग क्रम से नील, शुक्ल, और सुवर्ण वर्ण का होता है।)

अन्य क्षेत्रों में आयु की क्या व्यवस्था है ?

तथोत्तराः ॥ 30 ॥

उत्तर कुरु (विदेह क्षेत्र के उत्तर में एक विशेष स्थान) में देव कुरु के समान, रम्यक् क्षेत्र में हरि क्षेत्र के समान और हैरण्यवत् क्षेत्र में हेमवत् क्षेत्र की तरह ही प्राणियों की आयु होती है।

विदेह क्षेत्र में आयु की क्या व्यवस्था है ?

विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥ 31 ॥

विदेह क्षेत्र में संख्यात् वर्ष की आयु होती है। उत्कृष्ट आयु पूर्व कोटि वर्ष है और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

भरत क्षेत्र का विस्तार

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-

शत-भागः ॥ 32 ॥

भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के विस्तार का 1/190 भाग प्रमाण है।

टिप्पणी- इसी अध्याय के चौबीसवें सूत्र में भरत क्षेत्र का जो विस्तार दिया है, वह जम्बूद्वीप के विस्तार के 1 लाख योजन का 1/190 के ही बराबर है।

धातकी खण्ड द्वीप का वर्णन-

द्वि-र्धातकी-खण्डे ॥ 33 ॥

धातकी खण्ड द्वीप में क्षेत्र, पर्वत, नदी आदि समस्त बातें जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी हैं।

पुष्करवर द्वीप का वर्णन-

पुष्करार्द्धं च ॥ 34 ॥

पुष्करवर द्वीप के आधे भाग में भी सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी है।

टिप्पणी- पुष्करवर द्वीप के ठीक मध्य में चूड़ी के आकार का एक मानुषोत्तर पर्वत है। इसके कारण समस्त पुष्करवर द्वीप दो भागों में विभक्त हो जाता है।

पुष्करवर द्वीप के आंतरिक भाग को पुष्करार्द्ध कहते हैं। पुष्करार्द्ध में समस्त रचना जम्बूद्वीप से दुनी-दुनी है।

पुष्करवर द्वीप का मनुष्य क्षेत्र-

**प्राङ्-मानुषोत्तरान्-मनुष्याः ॥ 35 ॥**

मानुषोत्तर पर्वत से पहले पहले ही मनुष्य होते हैं,  
आगे नहीं। विद्याधर एवं ऋद्धि प्राप्त मुनि भी मानुषोत्तर  
पर्वत को लाँधकर आगे नहीं जा सकते हैं।

मनुष्यों के भेद

**आर्या म्लेच्छाश्च ॥ 36 ॥**

आर्य और म्लेच्छ ये दो प्रकार के मनुष्य होते हैं।  
जो गुणों से सम्पन्न हों अथवा जिसकी गुणी जन सेवा करें  
उन्हें आर्य कहते हैं। जो आचार-विचार से भ्रष्ट हों, धर्म-  
कर्म का कुछ विवेक न हो, निर्लज्जता पूर्वक चाहे जो  
कुछ बोलते हों, उन्हें म्लेच्छ कहा गया है। ये अन्तर्द्वीपज  
और कर्म भूमिज के भेद से दो प्रकार के होते हैं। आर्य भी  
दो प्रकार के होते हैं, ऋद्धि-प्राप्त और दूसरे ऋद्धि-रहित।

भूमियों का वर्णन

**भरतै-रावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देव-कुरुत्तर**

**कुरुभ्यः ॥ 37 ॥**

जिस भूमि में अपनी जीविका के निर्वाह के लिए असि-मसि आदि षट्कर्म करना पड़े अथवा जिस भूमि में विशिष्ट पुण्य के संचय पूर्वक सर्वार्थसिद्धि आदि स्वर्ग एवं कर्म क्षय कर मोक्ष की प्राप्ति होती है उसे कर्म भूमि कहते हैं। कर्म भूमि में ही दयादान आदि की प्रवृत्ति होती है।

(कर्म भूमियों में सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त कराने वाला उत्कृष्ट शुभकर्म तथा सातवें नरक ले जाने वाला निकृष्ट अशुभकर्म भी किया जाता है। इसलिये इन्हें कर्मभूमि कहते हैं।) ऐसी कर्मभूमियाँ ढाई द्वीप में 15 हैं, जिनमें 5 भरत क्षेत्र, 5 ऐरावत क्षेत्र, उत्तर कुरु और देवकुरु को छोड़कर 5 विदेह क्षेत्र भी सम्मिलित हैं। (मानुषोत्तर पर्वत से आगे और स्वयंभूरमण द्वीप के मध्य में स्थित स्वयंभूरमण पर्वत के बीच जितने द्वीप हैं उन्हें भोगभूमि प्रतिभाग कहते हैं। आधा स्वयंभूरमण द्वीप, पूरा स्वयंभूरण समुद्र और समुद्र के बाहर चारों कोने में रहने वाले जीव कर्म भूमिया कहलाते हैं। उसे कर्मभूमि प्रतिभाग कहते हैं)

मनुष्यों की आयु कितनी हो सकती है ?

नृ-स्थिति परावरे

त्रि-पल्योपमान्त-मुहूर्ते ॥ 38 ॥

मनुष्यों की आयु अधिक से अधिक तीन पल्योपम हो सकती हैं और कम से कम अन्तमुहूर्त की हो सकती है।

तिर्यचों की आयु कितनी हो सकती है ?

तिर्यग-योनिजानां-च ॥ 39 ॥

मनुष्यों की तरह तिर्यचों की भी उत्कृष्ट आयु तीन पल्य और जघन्य आयु अन्तमुहूर्त की हो सकती है।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ 3 ॥

---

---

## चतुर्थ अध्याय

देव कितने प्रकार के होते हैं ?

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ 1 ॥

देव चार प्रकार के होते हैं—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी। इन चारों में भी अनेक भेद होते हैं।

देवों की लेश्यायें कैसीं होतीं हैं ?

आदितस्-त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥ 2 ॥

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों की कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्यायें ही होती हैं।

विशेष— यूं तो भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के एक मात्र पीत लेश्या ही होती है। किन्तु भवनत्रिक में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य-तिर्यच्च नियमतः मिथ्यादृष्टि और अशुभ लेश्या के साथ ही भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं। अतः अपर्याप्त अवस्था की अपेक्षा उनमें अशुभ लेश्याएँ रहती हैं।

देवों के उपभेद कितने हैं ?

दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोप-  
पन्न-पर्यन्ताः ॥ 3 ॥

भवनवासी देव दस प्रकार के, व्यंतर देव आठ प्रकार के, ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के, कल्पोपपन्न (सोलहवें स्वर्ग) तक के देव बारह प्रकार के होते हैं।

चारों प्रकार के देवों में सामान्य भेद कितने हैं ?

इन्द्र-सामानिक-त्रायस्-त्रिंश-पारिषदात्म-  
रक्षलोकपालानीक प्रकीर्ण-काभियोग्य-  
किल्विषिकाश-चैकशः ॥ 4 ॥

चारों प्रकार के देवों में इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य और किल्विषिक के भेद से दश प्रकार के देव होते हैं। इन्द्र समस्त देवों का स्वामी होता है। सामाजिक आज्ञा और ऐश्वर्य को छोड़कर सभी बातों में इन्द्र के समान होता है। त्रायस्त्रिंश मंत्री या पुरोहित का काम करते हैं।

पारिषद सभासदों की तरह होते हैं। आत्मरक्ष-इन्द्र के अंगरक्षक होते हैं, लोकपाल रक्षक का काम करते हैं, पदाति आदि सात प्रकार की देवसेना अनीक कहलाते हैं, सामान्य नागरिकों की तरह रहनेवाले देव प्रकीर्णक कहलाते हैं। अभियोग्य वाहन का काम करते हैं तथा किल्विषिक अन्त्यज तुल्य होते हैं।

किन्तु

त्रायस्-त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या-व्यन्तर-  
ज्योतिष्काः ॥ 5 ॥

व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते हैं।

तथा

पूर्वयो-द्वीन्द्राः ॥ 6 ॥

भवनवासी और व्यन्तर देवों की प्रत्येक जाति में दो-दो इन्द्र होते हैं।

देवों में रति सुख भी है क्या ?

काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ 7 ॥

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म और ऐशान स्वर्ग तक के देव मनुष्य और तिर्यङ्गों की भाँति “काय प्रवीचार” अर्थात् शरीर से विषय सुख भोगने वाले होते हैं। शरीर से काम सेवन करते हैं।

दूसरे स्वर्ग के बाद इसमें क्या परिवर्तन आता है ?

शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥ 8 ॥

शेष देव क्रमशः देवियों के स्पर्श, रूपावलोकन, शब्द श्रवण और मानसिक स्मरण से सुख भोगते हैं। उनमें सानतकुमार-माहेन्द्र स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के स्पर्श मात्र से, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कपिष्ठ स्वर्ग के देव देवांगनाओं के हाश-विलास और रूपावलोकन से शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार स्वर्ग के देव देवियों के मधुर गीत आदि के श्रवण से तथा आनत-प्राणत और आरण-अच्युत स्वर्ग के देव अपनी देवियों के मन से स्मरण मात्र में विषय सुख का अनुभव करते हैं।

---

तत्त्वार्थ सूत्र

---

और आगे

परेऽप्रवीचाराः ॥ 9 ॥

सोलह स्वर्गों से ऊपर नवग्रैवेयक, नव अनुदिश और  
पञ्च अनुत्तर विमानवासी देव विषय सुख से रहित होते हैं।

भवनवासी देव कितने प्रकार के हैं ?

भवन-वासिनोऽसुर-नाग-विद्युत्-सुपर्णाग्नि  
वात्-स्तनितो-दधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥ 10 ॥

भवनवासी देवों में असुरकुमार, नागकुमार,  
विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार,  
स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ऐसे  
दस भेद होते हैं।

व्यन्तर देवों के कितने भेद होते हैं ?

व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व यक्ष-  
राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥ 11 ॥

व्यन्तर देवों के किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व,  
यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ भेद होते हैं।

ज्योतिषी देवों के कितने भेद हैं ?

ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णक-  
तारकाश्च ॥ 12 ॥

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पाँच भेद  
ज्योतिषी देवों के हैं।

ज्योतिषी देव क्या गमन भी करते हैं ?

मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके ॥ 13 ॥

ढाई द्वीप के विस्तार में अर्थात् मनुष्य लोक में ये  
ज्योतिषी-देव मेरु की परिक्रमा देते हुए सदा गमन करते  
रहते हैं।

इनके निरन्तर गमन से क्या लाभ है ?

तत्-कृतः काल-विभागः ॥ 14 ॥

घन्टा-मिनट, दिन-रात आदि के समय का विभाग  
इन ज्योतिष्क देवों (सूर्य चन्द्र आदि के) द्वारा होता है।

लेकिन-

बहि-रवस्थिताः ॥ 15 ॥

मनुष्य लोक के बाहर अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत के परे ज्योतिषी देव स्थिर हैं।

अब वैमानिक देवों के बारे में बताते हैं-

वैमानिकाः ॥ 16 ॥

विमानों में जो रहते हैं उन्हें वैमानिक देव कहते हैं।

वैमानिक देवों के कितने भेद हैं ?

कल्पोप-पन्नाः कल्पातीताश्च ॥ 17 ॥

वैमानिक देव कल्पोन्न और कल्पातीत के भेद से 2 प्रकार के हैं। 16 स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले देव कल्पोपन्न और नवग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले देव कल्पातीत कहलाते हैं।

विमानों की स्थिति किस क्रम से है ?

उपर्युपरि ॥ 18 ॥

इन देवों के विमान क्रमशः ऊपर-ऊपर हैं।

इन विमानों के नाम क्या हैं ?

सौधर्मेशान-सानत्कुमार माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-  
लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार- सहस्रा-  
रेष्वानत-प्राणतयो-रारणा-च्युतयो-नवसु ग्रैवेयकेषु  
विजय वैजयन्त जयन्ता-पराजितेषु

सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥ 19 ॥

सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर,  
लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-  
प्राणत, आरण-अच्युत इन सोलह स्वर्गों में तथा नव ग्रैवेयक,  
नव अनुदिश और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित  
और सर्वार्थसिद्धि इन पाँच अनुत्तर विमानों में वैमानिक  
देव रहते हैं।

वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर उत्कर्ष-  
स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रिया-  
वधि-विषयतोऽधिकाः ॥ 20 ॥

इन वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर आयु, प्रभाव सुख,

शरीरकान्ति, लेश्याओं की विशुद्धि, इन्द्रियों का विषय तथा अवधिज्ञान के विषय की अधिकता पाई जाती है।

**वैमानिक देवों में पाई जाने वाली उत्तरोत्तर कमी-  
गति-शरीर-परिग्रहाभि-मानतो हीनाः ॥ 21 ॥**

परन्तु वैमानिक देवों में गति, शरीर का आकार, परिग्रह और अभिमान उत्तरोत्तर कम होता जाता है।

वैमानिक देवों की लेश्यायें कैसी हैं ?

**पीत-पद्म-शुल्क-लेश्या-द्वि-त्रि-शेषेषु ॥ 22 ॥**

दो, तीन, कल्पयुगलों में और शेष में क्रमशः पीत, पद्म, और शुक्ल लेश्या वाले देव हैं। वे इस प्रकार हैं— सौधर्म- ऐशान स्वर्ग-पीत लेश्या, सानत् कुमार माहेन्द्र-पीत और पद्म, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर लान्तव कापिष्ठ पद्म लेश्या, शुक्र-महाशुक्र शतार सहस्रार पद्म और शुक्ल लेश्या, उसके ऊपर आनत-प्राणत, आरण-अच्युत, नवग्रैवेयक स्वर्गों में शुल्क लेश्या उससे ऊपर अनुदिश और अनुत्तर विमानों में परम शुक्ल लेश्या होती है।

---

तत्त्वार्थ सूत्र

कल्प किन्हें कहते हैं ?

प्राग्-ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ 23 ॥

ग्रैवेयकों से पहले के विमानों को (अर्थात् सोलह स्वर्गों को) कल्प कहते हैं। नवग्रैवेयक, नव अनुदिश पाँच अनुत्तर विमान कल्पातीत कहलाते हैं। कल्पातीत विमानों के देव समान वैभव के धारी होते हैं ये अहमिन्द्र कहलाते हैं।

लौकान्तिक देव कहाँ रहते हैं ?

ब्रह्म लोकालया लौकान्तिकाः ॥ 24 ॥

पाँचवे ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में लौकान्तिक देव रहते हैं, जो स्वर्ग से चयकर मनुष्य का भव धारण करके मुक्त हो जाते हैं।

लौकान्तिक देव कितने प्रकार के होते हैं ?

सारस्वतादित्य- वह्नियरुण- गर्दतोय- तुषिता  
व्याबाधा- रिष्टाश- च ॥ 25 ॥

लौकान्तिक देवों में सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण,

गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट आठ प्रकार के लौकान्तिक देव होते हैं।

पंच अनुत्तर के अहमिन्द्रों की संसार-अवधि क्या है ?

**विजयादिषु द्वि-चरमाः ॥ 26 ॥**

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी अहमिन्द्र मनुष्य के दो भव धारण करके नियम से मोक्ष चले जाते हैं किन्तु सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र मनुष्य का एक भव धारण करके ही मोक्ष चले जाते हैं।

तिर्यञ्चों की क्या स्थिति है ?

**औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्-तिर्यग्-योनयः ॥ 27 ॥**

उपपाद जन्म लेने वाले देव नारकी और मनुष्यों को छोड़कर समस्त संसारी जीव तिर्यञ्च कहलाते हैं। तिर्यञ्च सम्पूर्ण लोक में व्यास हैं।

भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयु क्या है ?

**स्थिति-रसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरो पम-  
त्रिपल्योप-मार्द्ध-हीन-मिताः ॥ 28 ॥**

भवनवासी देवों में असुरकुमार की एक सागर,

नागकुमार की तीन पल्य, सुपर्णकुमार की ढाई पल्य  
द्वीपकुमार की दो पल्य और शेष छः कुमारों की डेढ़-  
डेढ़ पल्य की उत्कृष्ट आयु है।

वैमानिक देवों की उत्कृष्ट आयु क्या है ?

सौधर्मेशानयोः सागरोपमेअधिके ॥ 29 ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु  
दो सागर से कुछ अधिक है।

सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥ 30 ॥

सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में देवों की आयु  
कुछ अधिक सात सागर है।

त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभि-  
रधिकानि तु ॥ 31 ॥

आगे के युगलों में सात सागर से क्रमपूर्वक तीन,  
सात, नौ, ग्यारह, तेरह और पन्द्रह सागर अधिक आयु है।  
इस तरह सोलहवें स्वर्ग में 22 सागर की उत्कृष्ट आयु है।

आरणाच्युता-दूर्ध्व-मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु  
विजयादिषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥ 32 ॥

आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयकों में, नव अनुदिशों और विजय आदि अनुत्तर विमानों में एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है। इस तरह प्रथम ग्रैवेयक में 23 सागर और नौवें ग्रैवेयक में 31 सागर, अनुदिशों में 32 सागर और 5 अनुत्तर विमानों में 33 सागर की उत्कृष्ट आयु है। सर्वार्थसिद्धि के देवों की आयु पुरी तैतीस सागर है। वहाँ जघन्य-उत्कृष्ट का भेद नहीं है।

स्वर्गों में जघन्य आयु कितनी है ?

अपरा पल्योपम-मधिकम् ॥ 33 ॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जघन्य आयु कुछ अधिक एक पल्य की है।

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥ 34 ॥

पहले पहले युगल की अधिकतम आयु आगे-आगे के युगलों की जघन्य आयु है। इसी क्रम से विजयादि चार विमानों तक जघन्य आयु समझ लेना चाहिए।

नारकियों की जघन्य आयु क्या है ?

नारकाणां-च द्वितीयादिषु ॥ 35 ॥

पहले-पहले नरकों की उत्कृष्ट आयु दूसरे-दूसरे नरकों  
के नारकियों की जघन्य आयु होती है ।

पहले नरक की जघन्य आयु क्या है ?

दश-वर्ष सहस्राणि प्रथमायाम् ॥ 36 ॥

पहले नरक में जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ।

भवनवासियों की जघन्य आयु क्या है ?

भवनेषु च ॥ 37 ॥

भवनवासियों की भी जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ।

व्यन्तरों की जघन्य आयु क्या है ?

व्यन्तराणां-च ॥ 38 ॥

व्यन्तर देवों की भी जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है ।

व्यन्तरों की उत्कृष्ट आयु क्या है ?

परा पल्योपम-मधिकम् ॥ 39 ॥

व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य से कुछ  
अधिक है ।

ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट आयु कितनी है ?

ज्योतिष्काणां च ॥ 40 ॥

ज्योतिषी देवों की भी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक  
एक पल्य की है ।

और जघन्य आयु कितनी है ?

तदष्ट-भागोऽपरा ॥ 41 ॥

ज्योतिषी देवों की जघन्य आयु 1/8 पल्य है ।

लौकान्तिक देवों की आयु क्या है ?

लौकान्तिकाना-मष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ 42 ॥

सभी लौकान्तिक देवों की आयु आठ सागर होती  
है । जघन्य उत्कृष्ट का भेद नहीं है । सबकी शुक्ल लेश्या  
होती है । शरीर की ऊँचाई 5 हॉथ होती है और चौदह पूर्व  
के धारी होते हैं, ये देवऋषि कहलाते हैं ।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥

## पंचम अध्याय

( अजीव तत्त्व का वर्णन )

अजीव क्या है ?

अजीव-काया-धर्मा-धर्माकाश-पुद्गलाः ॥ 1 ॥

धर्म, अधर्म (ये द्रव्यों के नाम हैं), आकाश और पुद्गल ये चारों अजीव (चेतन रहित) हैं और काय (बहु प्रदेशी हैं (काल द्रव्य को इसमें इसिलये सम्मिलित नहीं किया गया क्योंकि वह बहुप्रदेशी नहीं है)

द्रव्याणि ॥ 2 ॥

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये द्रव्य हैं।

जीवाश्च ॥ 3 ॥

जीव भी एक द्रव्य है। आगे सूत्र 39 में काल भी द्रव्य बताया गया है। इस तरह जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये छः द्रव्य हैं। द्रव्यों की गणना इसलिए की गई है क्योंकि द्रव्य छह ही हैं। अन्य लोगों के द्वारा मानी गई द्रव्य की संख्या ठीक नहीं है।

द्रव्य की विशेषता क्या हैं ?

### नित्यावस्थितान्य रूपाणि ॥ 4 ॥

ये सभी छः द्रव्य नित्य हैं कभी नष्ट नहीं होते, अवस्थित हैं कभी अपने प्रदेशों को नहीं छोड़ते। पुद्गल द्रव्य के अतिरिक्त सभी द्रव्य अरूपी हैं।

### रूपिणः पुद्गलाः ॥ 5 ॥

पुद्गल द्रव्य में रूप, रस, गंध और स्पर्श पाये जाते हैं, इसलिये पुद्गल द्रव्य रूपी हैं।

### आ आकाशा-देक द्रव्याणि ॥ 6 ॥

धर्म, अधर्म, आकाश तक एक-एक द्रव्य हैं।

### निष्क्रियाणि च ॥ 7 ॥

तथा निष्क्रिय हैं

धर्म, अधर्म और आकाश ये द्रव्य निष्क्रिय हैं अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की क्रिया इन द्रव्यों में नहीं पाई जाती है, क्योंकि ये पूरे लोकाकाश में व्यास हैं।

**असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकं जीवानाम् ॥ 8 ॥**

धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात् प्रदेश हैं। एक पुद्गल परमाणु जितने आकाश क्षेत्र को घेरता है, उतने क्षेत्र को एक प्रदेश कहते हैं।

**आकाशस्या-नन्ताः ॥ 9 ॥**

आकाश द्रव्य के प्रदेश अनन्त हैं, पर लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात् ही हैं।

**संख्येया-संख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ 10 ॥**

पुद्गल द्रव्य के संख्यात्, असंख्यात्, और अनन्त प्रदेश हैं।

**नाणोः ॥ 11 ॥**

अणु के प्रदेश नहीं होते। अणु पुद्गल की सूक्ष्मतम इकाई है। इसमें अन्य प्रदेशों का भेद नहीं होता, वह एक प्रदेशी है।

समस्त द्रव्यों के रहने का स्थान कौन सा है ?

**लोकाकाशेऽव गाहः ॥ 12 ॥**

ऊपर कहे गये समस्त द्रव्यों का स्थान लोकाकाश में है।

---

तत्त्वार्थ सूत्र

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ 13 ॥

धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह समग्र लोकाकाश में है— जैसे तिल में तेल व्यास है वैसे ही समस्त लोकाकाश में धर्म और अधर्म द्रव्य व्यास है।

**एक-प्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ 14 ॥**

पुद्गल द्रव्य का स्थान लोकाकाश के एक प्रदेश से लेकर असंख्यात् प्रदेशों तक यथायोग्य होता है।

**असंख्येय-भागादिषु-जीवानाम् ॥ 15 ॥**

लोकाकाश के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश तक जीवों का रहना होता है। एक ही जीव सारे लोक में समुद्रघात के समय व्यास हो सकता है।

असंख्यात् प्रदेशी जीव लोक के असंख्यातवें भाग में कैसे रहते हैं ? उत्तर में कहते हैं—

**प्रदेश-संहार विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ 16 ॥**

असंख्यात् प्रदेशी जीव के प्रदेश संकोच और विस्तार के द्वारा शरीर प्रमाण हो जाते हैं, जैसे दीपक का प्रकाश

बड़े कमरे में बड़ा और घड़े में संकुचित हो जाता है, वैसे ही जीव के प्रदेश संकुचित और विस्तीर्ण हो जाते हैं।

धर्म और अधर्म द्रव्य क्या उपकार करते हैं ?

गति-स्थित्युप-ग्रहौ धर्माधर्मयो-रूपकारः ॥ 17 ॥

जीवों और पुद्गलों को गमन करने में सहायता देना धर्म द्रव्य का और ठहरने में सहायता देना अधर्म द्रव्य का उपकार है।

आकाश का उपकार क्या है ?

आकाशस्यावगाहः ॥ 18 ॥

समस्त द्रव्यों को अवकाश देना आकाश का उपकार है।

पुद्गल द्रव्य का क्या उपकार है ?

शरीर-वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ 19 ॥

शरीर, वचन, मन तथा श्वासोच्छ्वास ये पुद्गल द्रव्य के उपकार हैं।

पुद्गल द्रव्य के अन्य भी प्रकार हैं क्या ?

सुख दुःख- जीवित-मरणोप-ग्रहाश्र ॥ 20 ॥

इन्द्रिय जन्य, सुख, दुःख जीवन और मरण ये भी

पुद्गल द्रव्य के उपकार हैं।

जीव द्रव्य का क्या उपकार है ?

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ 21 ॥

जीव परस्पर में उपकार करते हैं, जैसे पिता-पुत्र स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य आदि।

काल द्रव्य का क्या उपकार है ?

वर्तना-परिणाम क्रियाः परत्वा परत्वे च कालस्य ॥ 22 ॥

वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्य के उपकार हैं।

पुद्गल द्रव्य का क्या लक्षण है ?

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ 23 ॥

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण वाले पुद्गल होते हैं। हल्का-भारी, रुखा-चिकना, ठंडा-गरम और कड़ा-नरम स्पर्श के ये आठ भेद हैं। रस (स्वाद)के खट्टा, मीठा, कड़वा, कसैला और चरस्परा रूप पाँच भेद हैं। सुगंध और दुर्गंध के भेद से गंध के दो प्रकार हैं। तथा वर्ण के

पाँच भेद हैं- काला, पीला, नीला, लाल और सफेद। उक्त स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पुद्गल के लक्षण हैं। प्रत्येक पुद्गल में उक्त चारों होते हैं।

पुद्गल की कितनी पर्यायें होती हैं ?

शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमश-  
छाया-तपो-द्योत-वन्तश्च ॥ 24 ॥

पुद्गल द्रव्य में शब्द (भाषा, रूप और अभाषा, रूप), बन्ध (प्रायोगिक और वैस्त्रिक), सौक्ष्मता (अन्त्य, आपेक्षिक), स्थौल्य (अन्त्य और आपेक्षिक) संस्थान (इत्थंलक्षण और अनित्थंलक्षण), भेद (उत्कर, चूर्ण, खण्ड, चूर्णिका, प्रतर, अणुचटन) तम, छाया (वर्णादि, विकारात्मक, छाया प्रतिबिम्बात्मक छाया) आतप (उष्णता और प्रकाश) वाले होते हैं।

पुद्गल के कितने भेद हैं ?

अणवः स्कन्धाश्च ॥ 25 ॥

पुद्गल द्रव्य के दो भेद-अणु और स्कन्ध।

स्कन्धों की उत्पत्ति कैसे होती है ?

भेद-संघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥ 26 ॥

स्कन्धों की उत्पत्ति भेद से, संघात से और एक साथ भेद और संघात दोनों से होती है। यहाँ भेद का अर्थ है- अलग होना-टूटना तथा संघात का अर्थ है मिलना-जुड़ना।

अणु की उत्पत्ति कैसे होती है ?

भेदा-दणुः ॥ 27 ॥

परमाणु की उत्पत्ति भेद से होती है।

देखे जाने योग्य स्कन्ध की उत्पत्ति कैसे होती है ?

भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ 28 ॥

आँखों से देखे जा सकने वाला स्कन्ध भेद और संघात दोनों से ही उत्पन्न होता है, अकेले भेद से अथवा संघात से नहीं।

द्रव्य का लक्षण क्या है ?

सद्-द्रव्य-लक्षणम् ॥ 29 ॥

द्रव्य का लक्षण सत् है।

सत् का क्या स्वरूप है ?

उत्पाद-व्यय-धौव्य-युक्तं सत् ॥ 30 ॥

जो उत्पाद (नवीन पर्याय की उत्पत्ति), व्यय (विनाश), धौव्य (द्रव्य का वह स्वभाव जो द्रव्य की सभी अवस्थाओं में रहता है) से युक्त हो वह सत् है।

नित्य का क्या लक्षण है ?

तद्-भावाव्ययं नित्यम् ॥ 31 ॥

द्रव्य का अपनी जाति से च्युत या नष्ट न होना नित्य है।

द्रव्य नित्य भी है, अनित्य भी है सो कैसे ?

अर्पिता-नर्पित सिद्धेः ॥ 32 ॥

अर्पित यानी मुख्यता और अनर्पित यानी गौणता की अपेक्षा एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है। द्रव्य में नित्यत्व और अनित्यत्व आदि अनेक धर्म रहते हैं। जिस समय जिस धर्म का कथन होता है उस समय वह धर्म प्रधान हो जाता है और अन्य धर्म गौण हो जाते हैं। एक ही व्यक्ति अपेक्षा

भेद से पिता भी होता है और पुत्र, पति, भाई आदि भी। अतः अपेक्षा भेद से एक ही वस्तु में अनेक धर्म रहने में कोई विरोध नहीं है।

परमाणु परस्पर में जुड़ कैसे जाते हैं ?  
स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः ॥ 33 ॥

परमाणुओं का चिकनापन (स्निग्ध गुण) और रूखापन (रूक्षगुण) परस्पर में जुड़कर उनके स्कन्ध रूप बनने में कारण होता है।

किन्तु जघन्य गुण वाले पुद्गलों का बन्ध नहीं होता-  
न जघन्य-गुणानाम् ॥ 34 ॥

प्रत्येक परमाणु में स्निग्ध आदि के एक से लेकर अनन्त तक गुण रहते हैं। जिन परमाणुओं में स्निग्धता या रूक्षता का एक ही गुण रहता है, उन्हें जघन्य गुण कहते हैं। उनका परस्पर बन्ध नहीं हो सकता।

गुण साम्ये सदृशानाम् ॥ 35 ॥

गुणों की समानता होने पर सदृश परमाणुओं का भी बन्ध नहीं होता है।

तो फिर बन्ध किन स्थितियों में होता है ?

द्व्य-धिकादि-गुणानां तु ॥ 36 ॥

दो गुण अधिक होने पर समान और असमान जाति वाले परमाणुओं का परस्पर में बन्ध होता है ।

तथा-

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ 37 ॥

बन्ध होते समय दो अधिक गुण वाले परमाणु कम गुण वाले परमाणुओं को अपने में परिणत कर लेते हैं ।

द्रव्य किसे कहते हैं ?

गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥ 38 ॥

गुण और पर्याय जिसमें पाई जाये वह द्रव्य कहलाता है ।

क्या काल भी द्रव्य है ?

कालश्च ॥ 39 ॥

काल भी द्रव्य है ।

काल द्रव्य की क्या विशेषता है ?

सोऽनन्त समयः ॥ 40 ॥

यह काल द्रव्य अनन्त समय वाला है। काल द्रव्य की सबसे छोटी इकाई 'समय' है। मन्दगति से चलने वाले पुद्गल परमाणु को आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक चलने में जितना काल लगे उतने काल को समय कहते हैं।

**द्रव्य का गुण क्या होता है ?**

**द्रव्याश्रया निर्गुणा-गुणाः ॥ 41 ॥**

जो द्रव्य के आश्रित हों, निर्गुण हों (अर्थात् अन्य गुणों या पर्यायों से अछूते हों) उन्हें गुण कहते हैं।

**द्रव्य की पर्याय क्या होती है ?**

**तद्-भावः परिणामः ॥ 42 ॥**

उन छह द्रव्यों का अपने-अपने स्वरूप को छोड़े बिना अवस्था से अवस्थानन्तर होने को पर्याय कहते हैं।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ 5 ॥

## छठवां अध्याय

( आस्त्रव तत्त्व का वर्णन )

योग का स्वरूप क्या है ?

काय-वाङ्‌ मनः कर्म योगः ॥ 1 ॥

मन, वचन और काय की क्रिया को योग कहते हैं। काय, वचन और मन के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो हलन-चलन होता है, उसे योग कहते हैं। योग तीन प्रकार का होता है-काय योग, वचन योग और मनोयोग।

आस्त्रव किसे कहते हैं ?

स आस्त्रवः ॥ 2 ॥

ऊपर कहा गया योग ही आस्त्रव है अर्थात् काय, वचन और मन के द्वारा आत्मा के प्रदेशों में जो हलन चलन होता है उससे आस्त्रव ( कर्मों का आगमन ) होता है।

आस्त्रव कितने प्रकार का होता है ?

शुभः पुण्यस्या-शुभः पापस्य ॥ 3 ॥

शुभ योग से पुण्य का और अशुभ योग से पाप का

आस्त्रव होता है। शुभ परिणामों से होने वाला योग शुभ है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ कहलाता है। जो आत्मा को पवित्र करे वह पुण्य है, जो आत्मा को कल्याण की ओर न जाने दे वह पाप है। अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्यादि शुभ काय योग हैं। सत्य, हित-मित-प्रिय भाषणादि शुभ वचन योग हैं। अर्हन्त आदि की भक्ति, तप में रुचि, शास्त्र की विनय आदि शुभ मनोयोग हैं। हिंसा, चोरी, मैथुन आदि अशुभ काय योग हैं। असत्य, अप्रिय, अहित, कर्कश भाषण आदि अशुभ वचनयोग हैं। वध-चिन्तन, ईर्ष्या, असूया आदि अशुभ मनोयोग हैं। शुभ परिणामों से उत्पन्न योग को शुभ और अशुभ परिणामों से उत्पन्न योग को अशुभ योग कहते हैं।

**सकषाया-कषाययोः साम्परायि-केर्या-पथयोः ॥ 4 ॥**

कषाय सहित और कषाय रहित आत्मा को योग के निमित्त से क्रमशः साम्परायिक और ईर्यापथ आस्त्रव होता है। कषाय सहित जीवों का आस्त्रव साम्परायिक आस्त्रव कहलाता है। यह आत्मा के साथ दीर्घकाल तक

टिका रहता है। कषाय रहित जीवों का आस्त्रव ईर्यापथ आस्त्रव है। यह मार्गगामी है- अर्थात् आता है और चला जाता है, इसकी स्थिति एक समय की होती है। दसवें गुणस्थान तक साम्परायिक आस्त्रव होता है तथा ग्यारहवें से तेरहवें गुण स्थान तक ईर्यापथ आस्त्रव होता है।

साम्परायिक आस्त्रव कितने प्रकार का है ?

**इन्द्रिय-कषाया-व्रत-क्रियाः पञ्च चतुः पञ्च  
पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ 5 ॥**

पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, ब्राण, चक्षु और कर्ण) चार कषायें (क्रोध, मान, माया, लोभ) पाँच अव्रत (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) और पच्चीस निम्नलिखित क्रियाओं से साम्परायिक आस्त्रव होता है, जिसके कुल 39 भेद हैं। पच्चीस क्रियाओं का स्वरूप निम्न प्रकार है-

- (1) **सम्यक्त्व क्रिया** (सम्यक्त्व को बढ़ाने वाली क्रियायें जैसे देवपूजन, गुरुपास्ति, शास्त्र प्रवचन आदि)
- (2) **मिथ्यात्व क्रिया** (कुदेवपूजन, कुगुरुपास्ति और कुशास्त्र

पठन पाठन आदि) (3) प्रयोग क्रिया (गमनागमन करना), (4) समादान क्रिया (ब्रतों की उपेक्षा), (5) ईर्यापथ क्रिया (सावधानी से गमन), (6) प्रादोषिकी क्रिया (क्रोध में दूसरों पर दोषारोपण करना) (7) कायिकी क्रिया (दुष्टा पूर्वक उद्यम करना), (8) अधिकरण क्रिया (अस्त्र शस्त्र रखना), (9) पारितापिकी क्रिया (जीवों को पीड़ा देना), (10) प्राणातिपातिकी क्रिया (प्राणों का हरण करना), (11) दर्शन क्रिया (काम भाव से देखना), (12) स्पर्शन क्रिया (काम भाव से छूना) (13) प्रात्ययिकी क्रिया (नये नये हिंसादि के कारणों को जुटाना), (14) समन्तानुपात क्रिया (मनुष्यों/पशुओं के उठने बैठने के स्थान पर मल मूत्रादि करना), (15) अनाभोग क्रिया (बिना देखे-भाले भूमि पर चीजें रखना, अथवा उठना बैठना), (16) स्वहस्त क्रिया (दूसरों के करने योग्य कार्य को लोभवश स्वयं करना), (17) निसर्ग क्रिया (पाप क्रियाओं के लिये अनुमति देना या उनकी प्रशंसा करना), (18) विदारण क्रिया (दूसरों

के पापों को प्रगट कर देना), (19) आज्ञा व्यापादिकी क्रिया (जिन आज्ञा के विपरीत कथन करना) (20) अनाकांक्षा क्रिया (प्रमाद अथवा अज्ञान के कारण शास्त्रोक्त क्रियाओं का आदर नहीं करना), (21) प्रारम्भ क्रिया (प्राणियों का छेदन भेदन करना या उसमें हर्षित होना), (22) पारिग्रहिकी क्रिया (परिग्रह की रक्षा का प्रयत्न करना), (23) माया क्रिया (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप में तथा इनके धारी पुरुषों में कपट रूप प्रवृत्ति करना), (24) मिथ्यादर्शन क्रिया (मिथ्यात्व मत की क्रियाओं के पालन करने वाले की प्रशंसा करना), (25) अप्रत्याख्यान क्रिया (जो त्यागने योग्य है उसे भी न त्यागना)

आस्त्रव में विशेषता किन कारणों से होती है ?  
**तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञात भावाधिकरण-वीर्य-  
 विशेषेभ्यस्-तद्-विशेषः ॥ 6 ॥**

तीव्र भाव, मन्द भाव, ज्ञातभाव (संकल्प से युक्त), अज्ञात भाव, (प्रमाद अथवा अज्ञान जन्य) अधिकरण (क्रिया के आधार), और वीर्य की विशेषता से आस्त्रव में

न्यूनाधिकता रहती है। देशकाल आदि के भेद से आस्त्रव में भी भेद होता है।

अधिकरण का क्या स्वरूप है ?

अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ 7 ॥

आस्त्रव का आधार अर्थात् अधिकरण जीव अजीव दोनों हैं।

जीवाधिकरण के कितने भेद हैं ?

आद्यं-संरम्भ-समारम्भारम्भ-योग-कृत-  
कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्-त्रिस्-  
त्रिस्-त्रिश-चतुश्चैकशः ॥ 8 ॥

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ ये तीन, मन, वचन और काय ये 3, कृत कारित और अनुमोदना ये 3, क्रोध मान माया और लोभ ये 4 इनका परस्पर में गुणा करने पर ( $3\times 3\times 3\times 4$ ) 108 भेद जीवाधिकरण के होते हैं।

अजीवाधिकरण के कितने भेद है ?

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा-द्वि-चतु-  
द्वि-त्रि-भेदाः परम् ॥ 9 ॥

दो निर्वर्तना (मूल गुण निर्वर्तना और उत्तर गुण

निर्वर्तना, निर्वर्तना अर्थात् रचना करना), चार निश्चेप (वस्तु का रखना, इसके चार भेद अप्रत्यवेक्षित, दुःप्रमृष्ट, सहसा, अनाभोग), दो संयोग (संयोग अर्थात् मिलना-अन्नपान संयोग और उपकरण संयोग), और तीन निसर्ग (प्रवृति करने को निसर्ग कहते हैं), इनके तीन भेद हैं, काय, निसर्ग, वाक् निसर्ग और मनो निसर्ग, इस तरह अजीवाधिकरण के 11 भेद हैं, जिनके निमित्त से आत्मा में कर्मों का आस्रव होता है।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म का आस्रव किन कारणों से होता है ?

तत्प्रदोष-निह्रव-मात्सर्यान्तराया-सादनोपघाता-  
ज्ञान-दर्शना-वरणायोः ॥ 10 ॥

ज्ञान और दर्शन सम्बन्धी प्रदोष, निह्रव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात के कारण से ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्म का आस्रव होता है।

टिष्ठणी-तत्त्वज्ञानी या तत्त्वोपदेशकों के प्रति अंतरंग में ईर्ष्या भाव रखना ‘प्रदोष’ है। सम्यक्ज्ञान का अपलाप

करना अथवा ज्ञान दाता गुरु आदि का नाम छिपाना 'निह्व' है। शास्त्र का ज्ञान होते हुए भी द्वेषवश योग्य पात्र को भी ज्ञान न देना 'मात्सर्य' है। ज्ञानाभ्यास में विघ्न डालना 'अन्तराय' कहलाता है। सम्यग्ज्ञान का आदर न करते हुए उसके उपदेशक को रोकना 'आसादन' है तथा सच्चे ज्ञान में दोष गलाना 'उपघात' है।

"आचार्य और उपाध्याय के साथ शत्रुता रखना, अकाल में अध्ययन करना, अरुचिपूर्वक पढ़ना, पढ़ने में आलस करना, व्याख्यान को अनादर पूर्वक सुनना, लोभ बुद्धि से शास्त्र बेचना, तीर्थोपरोध, बहुश्रुत के सामने गर्व करना, मिथ्योपदेश, बहुश्रुत का अपमान, स्वच्छता का त्याग, पर पक्ष का ग्रहण, ख्याति पूजा आदि की इच्छा से असम्बद्ध प्रलाप, सूत्र के विरुद्ध व्याख्यान करना, कपट से ज्ञान को ग्रहण करना, शास्त्र बेचना और प्राणातिपात आदि ज्ञानावरण के आस्तव हैं।"

"देव गुरु आदि के दर्शन में मात्सर्य करना, दर्शन में अन्तराय करना, किसी की चक्षु को क्षति पहुँचाना,

इन्द्रियों का अभिमान करना, अपने नेत्रों का अहंकार करना, दीर्घ निद्रा, अति निद्रा, आलस्य, नास्तिकता, सम्यग्दृष्टियों को दोष देना, कुशास्त्रों की प्रशंसा करना, मुनियों से जुगुप्सा आदि करना और प्राणातिपात आदि दर्शनावरण के आस्त्रव हैं।

असातावेदनीय का आस्त्रव किन कारणों से होता है ?

दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेव-नान्यात्म-  
परोभय-स्थानान्य-सद्-वेद्यस्य ॥ 11 ॥

निज तथा पर दोनों के सम्बन्ध में किये जाने वाला दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन (रुदन), वध और परिवेदन (ऐसा रुदन जिससे सुनने वाले के हृदय में दया उत्पन्न हो जाये) असाता वेदनीय के आस्त्रव हैं।

टिप्पणी- ‘अशुभ प्रयोग, पर निन्दा, अदया, अंगोपांगों का छेदन भेदन तान, त्रास, अंगुली आदि से तर्जन करना, वचन आदि से किसी की भर्त्सना करना, रोधन, बन्धन, दमन, आत्म प्रशंसा, कलेशोत्पादन, बहुत

परिग्रह, मन वचन और काय की कुटिलता, पाप कर्मों से आजीविका करना, अनर्थ दण्ड, विषमिश्रण, बाण-जाल पिंजरा आदि का बनाना आदि भी असाता वेदनीय कर्म के आस्त्रव हैं ।”

साता वेदनीय कर्म के आस्त्रव क्या हैं ?

भूत-ब्रत्यनु-कम्पादान-सराग-संयमादि-योगः  
क्षान्तिः शौच-मिति सद्-वेद्यस्य ॥ 12 ॥

भूतानुकम्पा (समस्त प्राणियों के प्रति दया भाव होना), ब्रत्यनुकम्पा (अणुब्रत और महाब्रत धारियों के प्रति दया रखना), दान (परोपकार के लिये अपने द्रव्य का त्याग), सराग संयम (पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों से विरक्त होने तथा षट्काय जीवों की हिंसा न करना संयम है । राग सहित संयम पालना सराग संयम कहलाता है ।) क्षान्ति (क्रोध आदि दोषों का निवारण करते हुए क्षमा भाव रखना) और शौच (सब प्रकार के लोभ का त्याग) ये साता वेदनीय के आस्त्रव हैं ।

दर्शन मोहनीय के आस्त्रव के कारण क्या हैं ?

केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्ण-  
वादो दर्शन मोहस्य ॥ 13 ॥

केवली भगवान, श्रुत (जिनवाणी), संघ, धर्म और देवों की निन्दा करने से दर्शन मोहनीय कर्म का आस्त्रव होता है।

चारित्र मोहनीय का आस्त्रव क्या करने से होता है ?

कषायोदयात्-तीव्र-परिणामश-चारित्र मोहस्य ॥ 14 ॥

कषायों के उदय से होने वाले तीव्र परिणामों से चारित्र मोहनीय कर्म का आस्त्रव होता है। चारित्र मोहनीय के दो भेद-हैं- कषाय मोहनीय और अकषाय मोहनीय।

टिष्पणी-‘स्वयं और दूसरों को कषाय उत्पन्न करना, व्रत और शील युक्त यतियों के चरित्र में दूषण लगाना, धर्म का नाश करना, धर्म में अन्तराय करना, मात्सर्य आदि से रहित जनों में विभ्रम उत्पन्न करना, आर्त और रौद्र परिणामों को पैदा करने वाले ‘त्याग और व्रत आदि को धारण

करना इन कार्यों से कषाय मोहनीय कर्म का आस्त्रव होता है।'

अकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद।

समीचीन धर्म के पालन करने वाले का उपहास करना, दीनजनों को देखकर हंसना, आदि हास्य के आस्त्रव हैं। नाना प्रकार की क्रीड़ा करना, व्रत शील आदि में अरुचि होना—रति के आस्त्रव हैं। दूसरों में रति का विनाश करना, और अरति पैदा करना, पापशील जनों का संसर्ग करना और पाप क्रिया को प्रोत्साहन देना आदि अरति के आस्त्रव हैं। अपने और दूसरे में शोक उत्पन्न करना, शोक युक्त जनों का अभिनन्दन करना आदि शोक के आस्त्रव हैं। स्व और पर को भय उत्पन्न करना, निर्दयता, और दूसरों का त्रास देना आदि भय के आस्त्रव हैं। पुण्य क्रियाओं में जुगुप्सा करना, दूसरों की निन्दा करना आदि जुगुप्सा के आस्त्रव हैं, परस्त्रीगमन करना, स्त्री के भेष को धारण करना,

असत्य वचन, पर-वंचना, दूसरे के दोषों को देखने से स्त्रीवेद का आस्रव होता है। अल्प क्रोध, कपट का अभाव, स्त्रियों में अल्प आशक्ति, ईर्ष्या का न होना, स्वदार संतोष, परस्त्री का त्याग, आदि पुंवेद के आस्रव हैं। प्रचुर कषाय, गुह्येन्द्रिय का विनाश, परस्त्री का अपमान, स्त्री और पुरुषों में अनंग क्रीड़ा करना, व्रत और शीलधारी पुरुषों को कष्ट देना और तीव्र राग नपुंसकवेद के आस्रव हैं।

नरक आयु का आस्रव किन कर्मों से होता है ?

**बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ 15 ॥**

बहुत आरम्भ परिग्रह से नरक आयु का आस्रव होता है।

‘मिथ्यादर्शन, तीव्रराग, अनृत वचन, परद्रव्य-हरण, निःशीलता, तीव्र बैर, परोपकार न करना, यतियों में विरोध उत्पन्न करना, शास्त्र विरोध, कृष्णलेश्या, विषयों में तृष्णा की वृद्धि, रौद्र ध्यान, हिंसादि क्रूर कर्मों में प्रवृत्ति, बाल वृद्ध और स्त्री की हिंसा आदि भी नरक आयु का आस्रव कराते हैं।’

तिर्यञ्च आयु का आस्त्रव किन कर्मों से होता है ?

माया तैर्यग-योनस्य ॥ 16 ॥

छल कपट करने से तिर्यञ्च आयु का आस्त्रव होता है।

मनुष्य आयु का आस्त्रव किन कर्मों से होता है ?

अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ 17 ॥

थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह रखने से मनुष्य आयु का आस्त्रव होता है।

स्वभाव-मार्दवं-च ॥ 18 ॥

स्वभाव-मृदुता भी मनुष्य आयु का आस्त्रव है-यह देवायु का भी कारण है।

किन्तु-

निःशील व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ 19 ॥

सात शीलों (तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत) और अहिंसा आदि पाँच व्रतों का अभाव तथा अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह ये चारों गतियों की आयु का आस्त्रव कराते हैं। शील और व्रत रहित भोग भूमिज जीव ऐशान

स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। अतः उक्त जीवों की अपेक्षा निःशील व्रतित्व देवायु का आस्त्रव है। कोई अल्पारम्भी और अल्प परिग्रही अन्य पापों के कारण नरक आदि को प्राप्त करते हैं अतः ऐसे जीवों की अपेक्षा अल्पारम्भ परिग्रह से नरक आयु का भी आस्त्रव होता है।

देवायु का आस्त्रव कैसे होता है ?

सराग-संयम-संयमासंयमा-कामनिर्जरा-बाल-  
तपांसि दैवस्य ॥ 20 ॥

सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप से देवायु का आस्त्रव होता है।

सम्यक्त्वं-च ॥ 21 ॥

सम्यग्दर्शन से भी देवायु का आस्त्रव होता है। इस सूत्र को अलग से कहने का तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन से वैमानिक देवों की आयु का ही आस्त्रव होता है। सम्यग्दृष्टि भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवों में उत्पन्न नहीं होते।

अशुभ नाम कर्म का आस्त्रव कब होता है ?

योग-वक्रता विसंवादनं-चा शुभस्य नामः ॥ 22 ॥

मनोयोग, वचनयोग, काययोग की कुटिलता (अर्थात्

सोचे कुछ, कहे कुछ और करे कुछ) और विसंवादन (श्रेयोमार्ग की निन्दा करके बुरे मार्ग पर चलने को कहना जैसे सम्यक् चारित्र आदि क्रियाओं में प्रवृत्ति करने वालों से कहना कि तुम ऐसा मत करो और ऐसा करो) से अशुभ नाम कर्म का आस्रव होता है। इसके अतिरिक्त मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी, खोटे माप-तौल रखना, मिलावट करना, झूठी गवाही देना, यन्त्र पिंजरा आदि पीड़ा कारक पदार्थों का व्यापार करना, मायाचारी, परनिन्दा, आत्म प्रशंसा, दूसरों के भूमि भवन आदि पर अवैध कब्जा क्रूर कर्म करना, पाप आजीविका आदि को भी अशुभ नाम कर्म के आस्रव का कारण माना है।

शुभनाम कर्म का आस्रव कैसे होता है ?

**तद्-विपरीतं शुभस्य ॥ 23 ॥**

उससे विपरीत अर्थात् योगों की सरलता और अविसंवादन-यानी अन्यथा प्रवृत्ति का अभाव शुभ नाम कर्म का आस्रव कराता है।

तीर्थकर नाम कर्म का आस्रव कैसे होता है ?

दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता शील-व्रतेष्व-  
नतीचारोऽभीक्षण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तिस्  
त्याग-तपसी साधु-समाधि-वैयावृत्यकरण  
मर्हदाचार्य-बहुश्रुत प्रवचन-भक्ति-रावश्यका-  
परिहाणि- मार्ग प्रभावना प्रवचन-वत्सलत्व-मिति  
तीर्थकर-त्वस्य ॥ 24 ॥

दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शील और व्रतों में अतिचार न लगाना, अभीक्षण ज्ञानोपयोग और संवेग, यथाशक्ति त्याग और तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हद् भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक अपरिहाणि, मार्ग प्रभावना और प्रवचन वत्सलता इन 16 भावनाओं से तीर्थकर नाम प्रकृति का आस्रव होता है ।

नीच गोत्र का आस्रव किन कार्यों से होता है ?  
परात्म-निन्दा-प्रशंसे सद-सद्गुणोच्छादनोद्-भावने  
च नीचै-र्गोत्रस्य ॥ 25 ॥

दूसरों के विद्यमान गुणों को छुपाना और अपने अविद्यमान गुणों को प्रकट करना तथा अपने विद्यमान दोषों को छुपाने और दूसरों के अविद्यमान दोषों को प्रकट करने से नीच गोत्र का बंध होता है ।

**टिप्पणी-**आठमद से ग्रसित होना, दूसरों का अपमान करना, हंसी करना, गुरुओं का तिरस्कार, गुरुओं से टकराना, गुरुओं के दोषों को प्रकट करना, गुरुओं का विभेदन, गुरुओं को स्थान न देना, गुरुओं का अपमान, गुरुओं की भत्सना, गुरुओं से असभ्य वचन कहना, गुरुओं की स्तुति न करना, और गुरुओं को देखकर खड़े नहीं होना आदि भी नीच गोत्र के आस्त्रव का कारण हैं ।

उच्च गौत्र का आस्त्रव किन कार्यों से होता है ?

**तद्-विपर्ययो नीचै-वृत्यनुत्सेकौ-चोत्तरस्य ॥ 26 ॥**

पर प्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणोद्भावना, असद् गुणोच्छादन, नम्रवृत्ति और अनुत्सेक (ज्ञान तप आदि गुणों से उत्कृष्ट होते हुए भी मद न करना) से उच्च गोत्र का आस्त्रव होता है ।

आठ मदों का परिहार, दूसरों का अपमान प्रहास और परिवाद न करना, गुरुओं का तिरस्कार न करना, गुरुओं का सम्मान और गुण वर्णन करना मृदु भाषण करना आदि भी उच्च गोत्र का आस्त्रव कराते हैं।

अन्तराय कर्म का आस्त्रव किन कारणों से होता है ?

### विघ्नकरण-मन्तरायस्य ॥ 27 ॥

किसी दूसरे के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न उत्पन्न करने से अन्तराय कर्म का आस्त्रव होता है। इसके अतिरिक्त जिन पूजा में विघ्न करने से, निर्माल्य द्रव्य/देव द्रव्य का सेवन करने से, पापों में रत रहने से, मोक्ष मार्ग में दोष बताकर विघ्न डालने से तीव्र अन्तराय कर्म का बन्ध होता है।

इति श्री उमास्वामी विरचिते मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ 6 ॥

---

---

## सप्तम अध्याय

व्रत किसे कहते हैं?

हिंसाऽनृत-स्तेया-ब्रह्म-परिग्रहेभ्यो-विरति-व्रतम् ॥ 1 ॥

हिंसा, अनृत (झूठ), स्तेय (चोरी), अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहलाता है।

व्रत कितने प्रकार के होते हैं ?

देशसर्वतोऽणुमहती ॥ 2 ॥

व्रत के दो भेद हैं-अणुव्रत, महाव्रत। हिंसा आदि पाँच पापों का एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है और सर्वदेश त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

व्रतों की स्थिरता के लिये क्या करना चाहिये ?

तत्-स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ 3 ॥

उन व्रतों की स्थिरता के लिये प्रत्येक की पाँच पाँच भावनायें हैं।

वाङ् मनो-गुसीर्या-दान-निक्षेपण-समित्या-  
लोकित-पान-भोजनानि पञ्च ॥ 4 ॥

वचन गुसि, मनोगुसि, ईर्यासमिति, आदान-निक्षेपण समिति और आलोकितपान भोजन (सूर्य के प्रकाश में देखकर खाना-पीना) ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनायें हैं।

सत्यव्रत की पाँच भावनायें क्या हैं ?

**क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य प्रत्याख्या-नान्य-नुवीचि  
भाषणं च पञ्च ॥ 5 ॥**

क्रोध, लोभ, भय और हास्य का त्याग करना और अनुवीचि भाषण (शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना) ये सत्य व्रत की पाँच भावनायें हैं।

अचौर्य व्रत की भावनायें कौन सी हैं ?

**शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्य-  
शुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च ॥ 6 ॥**

शून्यागार अर्थात् पर्वत गुफा नदी तट आदि स्थानों में निवास करना, विमोचितावास अर्थात् त्यक्त स्थानों में रहना, परोपरोधाकरण अर्थात् अपने स्थान में ठहरने से किसी को न रोकना, भैक्ष्य शुद्धि अर्थात् शास्त्रानुसार भिक्षा

की शुद्धिरखना और सहधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना ये पाँच अचौर्य व्रत की भावनायें हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत की भावनायें क्या हैं?

स्त्री-राग-कथा-श्रवण तन्-मनोहरांगनिरीक्षण-  
पूर्वरतानु-स्मरण वृष्ट्येष्ट-रस स्वशारीर-संस्कार  
त्यागः पञ्च ॥ 7 ॥

स्त्रियों में रागवर्धक कथा-कहानी सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पहले भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग, काम वर्धक गरिष्ठ भोजन का त्याग और अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनायें हैं।

परिग्रह-त्याग व्रत की भावनायें क्या हैं ?

मनोज्ञा-मनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष  
वर्जनानि पञ्च ॥ 8 ॥

पाँचों इन्द्रियों के मनोज्ञ (इष्ट) विषय में राग तथा अमनोज्ञ (अनिष्ट) विषयों में द्वेष का त्याग करना ये पाँच परिग्रह त्याग व्रत की भावनायें हैं।

पाप करने से क्या होता है ?

हिंसा-दिष्टिहा-मुत्रापाया-वद्य दर्शनम् ॥ 9 ॥

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पापों के करने से इस लोक में और परलोक में भय (अपाय) और निन्दा (अवद्य) प्राप्त होती है।

तथा-

दुःखमेव वा ॥ 10 ॥

ये पाँच पाप दुःखस्वरूप ही हैं ऐसा विचार करना चाहिए।

और भी कोई भावनायें हैं क्या ?

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-

गुणाधिक क्लिश्यमाना-विनयेषु ॥ 11 ॥

प्राणीमात्र में मैत्री भाव, गुणीजनों के प्रति भक्ति (प्रमोद) भाव, दुःखी जीवों को देखकर करुणा-भाव और अविनयी (विपरीत वृत्ति वाले दुष्ट) जीवों के प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिए। दूसरों को दुःख की उत्पत्ति

न हो ऐसी भावना रखना ‘मैत्री’ है। गुणीजनों के प्रति प्रसन्नता आदि के द्वारा अंतरंग भक्ति प्रकट करना ‘प्रमोद’ है। दीन-दुःखी जीवों के प्रति अनुग्रह भाव पूर्वक उनके दुःखों को दूर करने का भाव ‘करुणा’ है तथा मिथ्यादृष्टि अविनयी व्यक्तियों के प्रति राग-द्वेष भाव न रखकर समता रखना ‘माध्यस्थ’ है।

वैराग्य वर्धन के लिये क्या करना चाहिए ?

**जगत्-काय-स्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम्॥ 12॥**

संसार से भीति (संवेग) तथा शरीर भोग आदि से विरक्त होने (वैराग्य) के लिये इस संसार और इस शरीर के स्वरूप का चिन्तवन करना चाहिए।

हिंसा किसे कहते हैं ?

**प्रमत्त-योगात् प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥ 13 ॥**

प्रमत्तयोग से प्राणों का वियोग करना हिंसा है। कषाय सहित प्राणी को प्रमत्त कहते हैं और उसकी मन वचन काय की क्रिया को प्रमत्त योग कहते हैं।

असत्य किसे कहते हैं ?

असद-भिधान-मनृतम् ॥ 14 ॥

प्रमत्त योग से असत् अर्थ को कहना अनृत  
(असत्य) है।

चोरी करना किसे कहते हैं ?

अदत्ता-दानं स्तेयम् ॥ 15 ॥

प्रमत्तयोग से बिना दी हुई किसी वस्तु को ग्रहण  
करना चोरी है।

कुशील किसे कहते हैं ?

मैथुन-मब्रह्म ॥ 16 ॥

प्रमत्तयोग से रति सुख के लिये स्त्री और पुरुष में  
अथवा पुरुष और पुरुष में जो चेष्टा होती है वह मैथुन  
(अब्रह्म) अर्थात् कुशील है।

परिग्रह किसे कहते हैं ?

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ 17 ॥

मूर्च्छा को परिग्रह कहते हैं। बाह्य वस्तुओं के प्रति  
ममत्व का भाव मूर्च्छा है। प्रमत्तयोग सहित मूर्च्छा को

परिग्रह कहते हैं ।

ब्रती किसे कहते हैं ?

निः शल्यो ब्रती ॥ 18 ॥

जिसके शल्य नहीं है वह ब्रती है । शल्य के तीन भेद हैं- माया, मिथ्यात्व और निदान । आत्म वञ्चनापूर्वक छल-कपट सहित व्रताचरण करना माया शल्य है । सम्यगदर्शन से विरहित धार्मिक प्रवृत्ति को मिथ्या शल्य कहते हैं तथा भावी भोगों की आकांक्षा से व्रताचरण/ तपश्चरण करना, उसमें ही रत चित्त रहना निदान शल्य कहलाता है । ब्रती इन तीनों शल्यों से रहित होता है ।

ब्रती कितने प्रकार के होते हैं ?

अगार्य-नगारश्च ॥ 19 ॥

अगारी और अनगारी के भेद से ब्रती दो प्रकार के होते हैं ।

अगारी ब्रती किन्हें कहते हैं ?

अणुव्रतोऽगारी ॥ 20 ॥

पाँच पापों का एकदेश त्याग करने वाले अणुव्रती

को अगारी कहते हैं। महाव्रती-मुनि अनगारी कहलाते हैं।

अणुव्रती के और भी कोई व्रत होते हैं ?

दिग्देशा-नर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोप-  
वासोप-भोग-परिभोग परिमाणा-तिथि संविभाग

व्रत सम्पन्नश्च ॥ 21 ॥

अणुव्रती को दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत (तीन गुणव्रत) और सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग-परिभोग परिमाण और अतिथिसंविभागव्रत (चार शिक्षाव्रत) का भी पालन करता है।

तथा

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ 22 ॥

मरण के अंत में होने वाली संल्लेखना को प्रीतिपूर्वक करना चाहिए। समतापूर्वक काय और कषायों को कृश करना सल्लेखना कहलाता है।

सम्यगदर्शन के अतिचार क्या हैं ?

शङ्का-कांक्षा-विचिकित्सान्य दृष्टि प्रशंसा-संस्तवा:  
सम्यगदृष्टे-रतिचाराः ॥ 23 ॥

शंका (जिनमत में अश्रद्धा मूलक संदेह) कांक्षा (सांसारिक भोगों की चाह) विचिकित्सा (रत्नत्रयधारी मुनियों के शरीर को देखकर ग्लानि का भाव) अन्य दृष्टि प्रशंसा (अन्य मतावलम्बी मिथ्यादृष्टियों की मन से प्रशंसा) और अन्य दृष्टि संस्तव (अन्य मतावलम्बियों की वचनों से स्तुति सम्यग्दृष्टि के अतिचार हैं। प्रतिज्ञा के आंशिक खंडन को अतिचार कहते हैं।)

ब्रत और शीलों के भी कोई अतिचार होते हैं ?

ब्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ 24 ॥

पाँच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों के क्रम से पाँच-पाँच अतिचार होते हैं।

अहिंसाणुव्रत के अतिचार क्या हैं ?

बन्ध-वधच्छेदाति-भारा-रोपणान्न-पान-निरोधः ॥ 25 ॥

बंध, वध, छेदन, अतिभारारोपण और अन्न-पान निरोध ये अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

सत्य-अणुव्रत के पांच अतिचार कौन से हैं ?

मिथ्योपदेश-रहोऽभ्याख्यान-कूटलेख-क्रिया-  
न्यासापहार-साकार-मंत्र भेदाः ॥ 26 ॥

मिथ्या उपदेश (झूठी सलाह या अहितकर उपदेश),  
रहोऽभ्याख्यान (किसी की गुप्त क्रियाओं या वचनों को  
दूसरों के सामने प्रकट कर देना, कूटलेखक्रिया (नकली  
दस्तावेज बनाना), न्यासापहार (दूसरों की भूली हुई धरोहर  
को हड़प लेना अर्थात् अमानत में ख्यानत करना), तथा  
साकार मंत्र भेद (अपनी शारीरिक चेष्टाओं से इशारों से)  
दूसरों की गुप्त बात को उजागर कर देना ये पाँचों ही  
सत्याणुव्रत के अतिचार हैं।

अचौर्याणुव्रत के पाँच अतिचार कौन से हैं ?

स्तेन-प्रयोग-तदा-हृतादान-विरुद्ध-राज्यातिक्रम-  
हीनाधिक मानोन्मान-प्रतिरूपक-व्यवहाराः ॥ 27 ॥

स्तेन प्रयोग (चोरी के लिये प्रेरणा देना), तदा हृतादान  
(चुराई हुई वस्तु को लेना), विरुद्ध राज्यातिक्रम

(शासनादेश के विरुद्ध चलना, जैसे टैक्स आदि की चोरी करना अल्प मूल्य की वस्तु अधिक मूल्य में बेचना), हीनाधिक मानोन्मान (खरीदने बेचने के काम आने वाले नाप-तौल के बाँट आदि कमती-बढ़ती रखना), और प्रतिरूपक व्यवहार (अधिक मूल्य की वस्तु में मिलावट कर कम मूल्य पर बेचना) ये पाँच कार्य अचौर्याणुव्रत में दोष लगाने वाले हैं।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के पाँच अतिचार कौन से हैं ?

पर-विवाह-करणेत्वरिका-परिगृहीता-परिगृहीता-  
गमना-नङ्ग क्रीडा-काम तीव्राभिनिवेशाः ॥ 28 ॥

पर विवाहकरण (दूसरों के विवाह कराना), परगृहीता इत्वरिका गमन (विवाहिता सधवा अथवा विधवा व्यभिचारिणी स्त्री के साथ उठना-बैठना), अपरिगृहीता इत्वरिका गमन (स्वामी रहित व्यभिचारिणी स्त्री, वेश्या आदि के साथ सम्पर्क रखना), अनङ्गक्रीड़ा (काम सेवन के अंगों के अतिरिक्त अन्य अंगों से क्रीड़ा करना), तथा काम तीव्राभिनिवेश (काम सेवन की अत्यधिक इच्छा

रखना) ये पाँच क्रियायें ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार हैं।

परिग्रह परिमाण अणुव्रत के अतिचार क्या हैं ?

**क्षेत्र-वास्तु-हिरण्य-सुवर्ण-धन-धान्य-दासी-दास-  
कुप्य-भाण्ड प्रमाणाति-क्रमाः ॥ 29 ॥**

क्षेत्र-वास्तु (खेत मकान) हिरण्य सुवर्ण (चांदी, सोना), धन-धान्य (पशुधन-अनाज), दासी-दास, कुप्य (वस्त्र आदि), भाण्ड (बर्तन आदि) इन वस्तुओं के परिमाण (सीमा) का उल्लंघन करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।

दिग्व्रत के अतिचार क्या हैं ?

**ऊर्ध्वाधस्-तिर्यग्व्यतिक्रम क्षेत्र-वृद्धि-स्मृत्यन्त-  
राधानानि ॥ 30 ॥**

ऊर्ध्व व्यतिक्रम, अधो व्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम (व्यतिक्रम का अर्थ- निर्धारित सीमा का उल्लंघन), क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तराधान (दिशाओं की निर्धारित सीमाओं को भूल जाना) ये पाँच दिग्व्रत के अतिचार हैं।

देशब्रत के अतिचार कौन से हैं ?

आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात  
पुद्गलक्षेपाः ॥ 31 ॥

आनयन (मर्यादा से बाहर की वस्तुएँ मँगाना), प्रेष्य प्रयोग (मर्यादा के बाहर क्षेत्र में नौकर आदि को भेजकर कार्य-सिद्धि कराना), शब्दानुपात (खांसी आदि के द्वारा मर्यादा के बाहर के लोगों को संकेत करना), रूपानुपात (मर्यादा के बाहर के लोगों को अपना शरीर दिखाकर कार्य सिद्धि-करना), पुद्गलक्षेप (मर्यादा से बाहर कंकर-पत्थर आदि फेंककर काम निकालना) ये पाँच देशब्रत के अतिचार हैं।

अनर्थ दण्डब्रत के अतिचार क्या हैं ?

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्या समीक्ष्याधि-  
करणोपभोग- परिभोगा- नर्थक्यानि ॥ 32 ॥

कन्दर्प (हास्य मिश्रित अशिष्ट वचन), कौत्कुच्य (शारीरिक कुचेष्टायुक्त हँसी-मजाक), मौखर्य (अनावश्यक

धृष्टा पूर्वक बोलना), असमीक्ष्याधिकरण, (बिना प्रयोजन मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करना), उपभोग परिभोगानर्थक्य (आवश्यकता से अधिक भोगेपभोग की साम्रगी का संग्रह करना) ये अनर्थ दण्डव्रत के पाँच अतिचार हैं।

**सामायिक व्रत के अतिचार क्या हैं ?**

**योग दुःप्रणिधाना नादर स्मृत्यनुप-स्थानानि ॥ 33 ॥**

काययोग दुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोग दुष्प्रणिधान (मन, वचन, काय की अन्यथा प्रवृत्ति), अनादर (सामायिक में उत्साहहीनता), और स्मृत्यनुपस्थान (विस्मृत हो जाना), ये सामाजिक व्रत के पाँच अतिचार हैं।

**प्रोषधोपवास व्रत के अतिचार क्या हैं ?**

**अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गा-दान-संस्तरोप-  
क्रमणा-नादर-स्मृत्यनुप-स्थानानि ॥ 34 ॥**

प्रत्यवेक्षित का अर्थ चक्षु से देखना तथा प्रमार्जित का अर्थ है कोमल उपकरण से झाड़ना (1) बिना देखे

- 
- बिना शोधी भूमि पर मल-मूत्र कूड़ा-करकट आदि डालना ।  
 (2) बिना देखे-शोधे वस्तुओं का उठाना-धरना ।  
 (3) बिना देखे बिना शोधे हुऐ बिस्तर पर सो जाना ।  
 (4) आवश्यक धार्मिक कार्यों में आदर का न होना ।  
 (5) करने योग्य कार्यों को भूल जाना ये पाँच प्रोष्ठ  
 उपवास व्रत के अतिचार हैं ।

उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के अतिचार कौन से हैं ?

**सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्रा-भिषव-दुः  
पक्वाहाराः ॥ 35 ॥**

सचित्ताहार (सचित वस्तुओं का भक्षण), सचित्त सम्बन्ध आहार (सचित वस्तु से सम्बन्धित वस्तु का भक्षण), सचित्त सम्मिश्राहार (सचित वस्तु से इस प्रकार मिश्रित आहार जिसे अलग न किया जा सके) और दुःपक्वाहार (अधपके या अधिकपके पदार्थ का भक्षण) ये पाँच उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के अतिचार हैं ।

अतिथि संविभाग व्रत के अतिचार कौन से हैं ?

सचित्त-निक्षेपापिधान-परव्यपदेश मात्सर्य  
कालातिक्रमाः ॥ 36 ॥

सचित्तनिक्षेप (सचित्तपात्र में भोजन रखकर देना),  
सचित्तापिधान (सचित्त वस्तु से ढँके आहार को देना),  
परव्यपदेश (दूसरे के द्वारा अपनी वस्तु का दान कराना),  
मात्सर्य (अनादर पूर्वक दान देना) और कालातिक्रम  
(आहार का समय टाल देना), ये पाँच अतिथि संविभाग  
व्रत के अतिचार हैं।

सल्लेखना व्रत के अतिचार क्या हैं ?

जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-  
निदानानि ॥ 37 ॥

सल्लेखना धारण करने पर जीविताशंसा (जीवित  
रहने की इच्छा करना), मरणाशंसा (मरने की इच्छा करना),  
मित्रानुराग (मित्रों का अनुराग पूर्वक स्मरण होना),  
सुखानुबन्ध (पूर्व में भोगे हुए भोगों का पुनः पुनः स्मरण

करना), निदान (तपस्या के फलस्वरूप आगामी जीवन में भोगों की आकांक्षा रखना), ये पाँच सल्लेखना व्रत के अतिचार हैं।

दान का स्वरूप क्या है ?

अनुग्रहार्थ स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ 38 ॥

अपने तथा पर के उपकार के लिए धन आदि वस्तुओं का अतिसर्ग-त्याग करना दान है।

किन स्थितियों में दान का महत्व होता है ?

विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्-  
तद्-विशेषः ॥ 39 ॥

विधि विशेष, द्रव्यविशेष, दाताविशेष और पात्र विशेष होने पर दान में भी विशेषता होती है।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ 7 ॥

---

---

## अष्टम् अध्याय

( बन्ध तत्त्व का वर्णन )

बन्ध किन कारणों से होता है ?

मिथ्यादर्शना-विरतिप्रमाद-कषाय-योगा  
बन्धहेतवः ॥ 1 ॥

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के कारण हैं।

क्या होने पर बन्ध होता है ?

सकषायत्वाज्-जीवः कर्मणो योग्यान्-  
पुद्गला-नादत्ते स बन्धः ॥ 2 ॥

कषाय सहित होने के कारण जीव कर्म के योग्य कार्माण वर्गणारूप पुद्गल परमाणुओं को जो ग्रहण करता है उसे बन्ध कहते हैं।

बन्ध कितने प्रकार का होता है ?

प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्-तद्-विधयः ॥ 3 ॥

उस बंध के प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग

बन्ध और प्रदेश बन्ध इस तरह चार भेद हैं। प्रकृति बंध-कर्मबंध के समय बंधने वाले कर्म परमाणुओं के स्वाभाव का निर्धारण। स्थितिबंध-बंधे हुए कर्म जब तक अपना फल देने की स्थिति में रहते हैं, तब तक की काल-मर्यादा। प्रदेशबंध-कर्म परमाणुओं की मात्रा। अनुभाग बंध-कर्मों की फलदान शक्ति का निर्धारण।

प्रकृति बन्ध के कितने भेद हैं ?

आद्यो-ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायु-र्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥ 4 ॥

प्रकृति बन्ध के आठ भेद इस प्रकार हैं-

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

क्या इन अष्ट कर्मों के उपभेद भी हैं ?

पञ्च-नव-द्वयष्टा-विंशति-चतु-द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ॥ 5 ॥

ज्ञानावरण कर्म के पाँच, दर्शनावरण कर्म के नौ,

वेदनीय कर्म के दो, मोहनीय कर्म के अट्टाईस, आयु कर्म के चार, नाम कर्म के ब्यालीस, गोत्र कर्म के दो और अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं।

ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद कौन से हैं ?

मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम् ॥ 6 ॥

वे पाँच भेद इस प्रकार हैं - मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण मनः पर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।

दर्शनावरणी कर्म के नौ भेद कौन से हैं ?

चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलानां-निद्रा-निद्रानिद्रा-  
प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यान-गृद्धयश्च ॥ 7 ॥

दर्शनावरण कर्म के नौ भेद इस प्रकार हैं - चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि। हल्की नींद को 'निद्रा' कहते हैं। गाढ़ी नींद जिसमें व्यक्ति कठनाई से जागे 'निद्रा-निद्रा' है।

‘प्रचला’ कर्म के उदय से जीव बैठे-बैठे या खड़े-खड़े सो जाया करता है। ‘प्रचला-प्रचला’ कर्म के उदय से जीव के मुख से लार बहने लगती है और हॉथ-पाँव आदि चलायमान हो जाते हैं। ‘स्त्यानगृद्धि’ कर्म के उदय से ऐसी प्रगाढ़तम नींद आती है, जिससे व्यक्ति दिन में या रात्रि में उठना-बैठना, चलना आदि अनेक क्रियाएँ निद्रावस्था में ही सम्पन्न कर लेता है।

वेदनीय कर्म के दो भेद कौन से हैं ?

सद्-सद्-वेद्ये ॥ 8 ॥

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं- साता वेदनीय और असाता वेदनीय।

मोहनीय कर्म के 18 भेद कौन से हैं ?

दर्शन-चारित्र-मोहनीया-कषाय-कषाय-  
वेदनीया-ख्यास्-त्रि-द्वि-नव-घोडश-भेदाः  
सम्यक्त्व-मिथ्यात्व तदुभ-यान्य- कषाय-कषायौ  
हास्य-रत्य-रति-शोक-भय-जुगुप्सा- स्त्री-पुन्-

नपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यान-  
प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश-चैकशः क्रोध-  
मान-माया-लोभाः ॥ ९ ॥

मोहनीय के दो भेद-पहला दर्शन मोहनीय, दूसरा चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय के ३ उपभेद हैं- पहला सम्यक्त्व, दूसरा मिथ्यात्व और तीसरा सम्यग्मिथ्यात्व। चारित्र मोहनीय के कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय ये दो उपभेद हैं। इनमें से कषाय वेदनीय के १६ भेद हैं- अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन, इन चार प्रकारों की चारों अर्थात् चार प्रकार के क्रोध, चार प्रकार का मान, चार प्रकार की माया, और चार प्रकार का लोभ। अकषाय वेदनीय के नौ भेद-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसकवेद।

इस प्रकार तीन भेद दर्शन मोहनीय के, सोलह भेद कषाय चारित्र मोहनीय के और नौ अकषाय चारित्र मोहनीय के मिलकर कुल मोहनीय कर्म के २८ भेद हुये।

आयु कर्म के चार भेद कौन से हैं ?

नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥ 10 ॥

आयु कर्म के चार भेद हैं-नरक आयु, तिर्यच्छायु,  
मनुष्यायु और देवायु ।

नाम कर्म के 42 भेद कौन से हैं ?

गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-संघात-  
संस्थान संहनन स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-नुपूर्व्या-  
गुरुलघूपघात-परघाता- तपोद्योतोच्छ्वास-  
विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ  
सूक्ष्मपर्यासि स्थिरादेय-यशः कीर्ति-सेतराणि  
तीर्थकरत्वं च ॥ 11 ॥

नाम कर्म के 42 भेद इस प्रकार हैं-गति, जाति,  
शरीर, अंग-उपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन,  
स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात,  
परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति, प्रत्येक  
शरीर, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर,

शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, स्थूल, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशः कीर्ति, अयशः कीर्ति और तीर्थकर प्रकृति ।

नामकर्म का निरूपण दो प्रकार से किया जाता है । एक पिण्ड रूप अर्थात् अभेद रूप से और दूसरा अपिण्ड रूप अर्थात् भेदरूप से । नामकर्म के उक्त ब्यालीस भेद-अभेद रूप से बताये गये हैं । भेद विवक्षा से नामकर्म के तेरानवे भेद होते हैं । जैसे गति अभेद रूप से एक तथा भेदरूप से चार प्रकार की होती हैं ।

गोत्र कर्म के कितने भेद हैं ?

उच्च-नीचैश्च ॥ 12 ॥

उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो भेद गोत्र कर्म के हैं ।

अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं ?

दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥ 13 ॥

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये पाँच भेद अन्तराय कर्म के हैं ।

प्रकृतिबन्ध तो समझ लिया, अब स्थितिबन्ध समझाइये-  
आदितस्-तिसृणा-मन्तरायस्य च त्रिंशत्-सागरोपम-  
कोटी-कोट्यः परा स्थितिः ॥ 14 ॥

पहले तीन कर्मों की (ज्ञानावरण, दर्शनावरण और  
वेदनीय) और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस  
कोड़ा-कोड़ी सागर है।

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति क्या है ?

सप्तति-मर्मोहनीयस्य ॥ 15 ॥

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा-कोड़ी  
सागर है।

नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति क्या है ?

विंशति-नाम-गोत्रयोः ॥ 16 ॥

नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ा-  
कोड़ी सागर की है।

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति क्या है ?

त्रयस्-त्रिशंत्-सागरोप-माण्यायुषः ॥ 17 ॥

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेंतीस सागर हैं।

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति क्या है ?

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ 18 ॥

वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है।  
(एक मुहूर्त अड़तालिस मिनिट का होता है।)

नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति-

नाम-गोत्रयो-रष्ट्रौ ॥ 19 ॥

नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त  
की है।

शेष कर्मों की जघन्य स्थिति क्या है ?

शेषाणा मन्त्रमुहूर्ताः ॥ 20 ॥

शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और  
आयु कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

अनुभाग बन्ध क्या है ?

विपाकोऽनुभवः ॥ 21 ॥

विविध या विशेष कर्मों के पाक अर्थात् फल देने को

अनुभव या अनुभाग कहते हैं। यह अनुभाग बन्ध कषायों की तीव्रता, मन्दता या मध्यमता और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, और भाव के अनुसार नाना प्रकार का होता है।

अनुभाग बन्ध के भेद भी हैं क्या ?

स यथा नाम ॥ 22 ॥

अनुभाग बन्ध कर्मों के नाम के अनुसार ही होता है, जैसे ज्ञानावरण कर्म का फल ज्ञान को आच्छादित करना है।

फल दे चुकने के बाद कर्मों की क्या दशा होती है ?

ततश्च निर्जरा ॥ 23 ॥

फल दे चुकने के पश्चात् कर्मों की निर्जरा हो जाती है अर्थात् कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं। इसे सविपाक निर्जरा कहते हैं। जिन कर्मों ने अभी फल नहीं दिया, उन्हें तप के द्वारा उदय में लाकर आत्मा से अलग कर देने को अविपाक निर्जरा कहते हैं।

प्रदेश बन्ध किसे कहते हैं ?

नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात् सूक्ष्मैक-क्षेत्राव-  
गाह-स्थिताः सर्वात्म प्रदेशेष्व-नन्तानन्त प्रदेशाः ॥ 24 ॥

योगों की विशेषता से ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के कारणभूत, सूक्ष्म और एक क्षेत्र में रहने वाले अनन्तानन्त, पुद्गल परमाणु का आत्मा के समस्त प्रदेशों के साथ बन्ध को प्राप्त होने को प्रदेश बन्ध कहते हैं ।

कर्मों की पुण्य प्रकृतियाँ कौनसी हैं ?

सद्-वेद्य-शुभायु-नाम-गोत्राणि-पुण्यम् ॥ 25 ॥

साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं ।

कर्मों की पाप प्रकृतियाँ कौनसी हैं ?

अतोऽन्यत्-पापम् ॥ 26 ॥

पुण्य प्रकृतियों के अतिरिक्त जो कर्म प्रकृतियाँ हैं, वे पाप प्रकृतियाँ हैं ।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ 8 ॥

## नवम अध्याय

( संवर और निर्जरा तत्त्व का वर्णन )

संवर तत्त्व किसे कहते हैं ?

आस्त्रव निरोधः संवरः ॥ 1 ॥

आस्त्रव के निरोध को ( अर्थात् कर्मों के आगमन के रोकने को) संवर कहते हैं ।

संवर किन उपायों से किया जाता है ?

स-गुसि-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-  
चारित्रैः ॥ 2 ॥

वह संवर गुसि, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र द्वारा होता है ।

परन्तु

तपसा निर्जरा च ॥ 3 ॥

तप से संवर के साथ-साथ निर्जरा भी होती है ।

गुसि किसे कहते हैं ?

सम्यग्योग- निग्रहो गुसिः ॥ 4 ॥

सम्यक् प्रकार से (विषय-अभिलाषा यश की

आकांक्षा को छोड़कर) मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना मनगुसि, वचन गुसि, और काय गुसि कहलाती है।

समिति किसे कहते हैं ?

ईर्या-भाषेषणा-दान-निक्षेपोत्सर्गः समितयः ॥ 5 ॥

समिति का अर्थ है- प्रवृत्तिगत सावधानी। समितियाँ पाँच हैं- ईर्या समिति (चार हाथ पृथ्वी देखकर चलना), भाषा समिति (हित मित प्रिय, असंदिग्ध, कषाय के अनुत्पादक, धर्म के अविरोधी वचन बोलना), ऐषणा समिति (शुद्ध निर्दोष आहार विधि पूर्वक ग्रहण करना), आदान-निक्षेपण समिति (देखभाल कर पीछी से झाड़ पोंछकर उठाना रखना), और उत्सर्ग समिति (जीव रहित स्थान में मल-मूत्र आदि का त्याग करना) ॥ 5 ॥

धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तम-क्षमा-मार्द-वार्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-  
स्त्यागा-किंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ 6 ॥

क्षमा, मार्दव (मान रहित), आर्जव (छल-कपट

रहित), शौच (निलोभिता) सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य (मोह लालसा का अभाव होना), ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं। इनके पहले 'उत्तम' शब्द लगाना चाहिये, जैसे क्षमा को 'उत्तम क्षमा' आदि कहना।

अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

अनित्य-शरण-संसारै-कत्वा-न्यत्वा-शुच्यास्त्रव  
संवर निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म-स्वाख्या-  
तत्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥ 7 ॥

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि-दुर्लभ और धर्म इनके स्वरूप का चिन्तवन करना सो ये बारह अनुप्रेक्षायें (भावनायें) हैं।

परीषह सहन करने की क्या आवश्यकता है ?

मार्गाच्यवन-निर्जरार्थ-परिषोढव्याः परीषहाः ॥ 8 ॥

संवर के मार्ग से च्युत न होने के लिये और कर्मों की निर्जरा के लिए बाईंस परीषहों को सहन करना चाहिये।

बाईंस परीषह कौन से हैं ?

क्षुत्-पिपासा-शीतोष्णा-दंशमशक-नागन्या-रति-  
स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-क्रोश-वध-याचनालाभ  
रोग-तृणस्पर्श-मल सत्कार पुरस्कार-प्रज्ञाज्ञाना-  
दर्शनानि ॥ 9 ॥

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता,  
अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना,  
अलाभ, रोग, तृण, मल, सत्कार, पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान  
और अदर्शन ये बाईंस परीषह हैं। सब ओर से समागत  
कष्टों को समतापूर्वक सहन करना परिषह जय कहलाता  
है।

इन बाईंस परीषहों को जो मुनि शान्त चित्त से सहन करता  
है, वह आस्त्रव का निरोध करके संवर को प्राप्त करता है।

किस गुणस्थान में कितने परीषह होते हैं ?

सूक्ष्म-साम्पराय-छद्मस्थ वीतरागयोश्-चतुर्दश ॥ 10 ॥

गुणस्थान 14 होते हैं (1) मिथ्यात्व (2) सासादन

(3) मित्र (4) अविरत सम्यगदृष्टि (5) देश विरत (6)  
 प्रमत्त संयत (7) अप्रमत्त (8) अपूर्व करण (9)  
 अनिवृत्तिकरण (10) सूक्ष्म साम्पराय (11) उपशान्त  
 मोह (12) क्षीण मोह (13) सयोग केवली (14) अयोग  
 केवली ।

सूक्ष्म साम्पराय अर्थात् दसवें गुण स्थान और छद्मस्थ  
 वीतराग बारहवें गुणस्थान में निम्न 14 परीषह होते हैं—  
 क्षुधा तृष्णा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शव्या, वध,  
 अलाभ, रोग, तृण स्पर्श, मल, प्रज्ञा और अज्ञान ।

### एकादश जिने ॥ 11 ॥

सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान में ग्यारह  
 परीषह होते हैं । पिछले सूत्र की व्याख्या में कहे गये 14  
 परीषहों में से अलाभ, प्रज्ञा और अज्ञान को छोड़कर शेष  
 11 परीषहों का सद्भाव वेदनीय कर्म के सद्भाव के  
 कारण बताया गया है । लेकिन मोहनीय के अभाव में  
 वेदनीय अपना कार्य नहीं कर सकता, इस अपेक्षा से

जिनेन्द्र भगवान् (तेरहवें गुणस्थान वर्ती) के 11 परीषह नहीं होते हैं।

### बादर साम्पराये सर्वे ॥ 12 ॥

बादर साम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय वाले छठवें, सातवें, गुणस्थानों में सभी या बीस तथा आठवें और नौवें गुणस्थान में अदर्शन परीषह के अतिरिक्त इक्कीस परीषह होते हैं।

कौन सा परीषह किस कर्म के उदय से होता है ?

### ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ 13 ॥

ज्ञानावरणी कर्म के उदय से प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होता है।

### दर्शन-मोहन्तराययो-रदर्शना-लाभौ ॥ 14 ॥

दर्शन मोहनीय और अन्तराय कर्म के उदय से क्रमशः अदर्शन परीषह और अलाभ परीषह होते हैं।

चारित्रमोहे नागन्या-रति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-  
सत्कार पुरस्काराः ॥ 15 ॥

चारित्र मोहनीय के उदय से सात परीषह होते हैं-

नागन्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार ।

### वेदनीये शेषाः ॥ 16 ॥

वेदनीय कर्म के उदय से शेष ग्यारह परीषह होते हैं, जिनके नाम हैं-क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शव्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ।

जीव को एक साथ कितनी परीषह हो सकते हैं ?

### एकादयो भाज्या-युगपदे-कस्मिन्-नैकोन विंशतेः ॥ 17 ॥

एक जीव के एक साथ उन्नीस परीषह हो सकते हैं, क्योंकि शीत उष्ण में से कोई एक ही एक समय में हो सकता है तथा चर्या, शव्या और निषद्या इन तीनों में से भी एक समय में कोई एक ही हो सकता है ।

गुस्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परीषह जय के पश्चात्

अब कृपया बतायें कि चारित्र क्या होता है ?

### सामाधिकच्छेदोप-स्थापना-परिहार विशुद्धि सूक्ष्म- साम्प्रराय यथाख्यात-मिति चारित्रम् ॥ 18 ॥

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात के भेद से चरित्र के पाँच प्रकार हैं।

**सामायिक-** साम्यभाव में स्थित रहने के लिये समस्त पाप प्रवृत्तियों का त्याग सामायिक चारित्र है।

**छेदोस्थापना-** गृहीत चारित्र में दोष लगने पर उनका परिहार कर मूलरूप में स्थापित होना, छेदोस्थापना चारित्र है।

**परिहार विशुद्धि-** चारित्र की जिस विशुद्धि से हिंसा का पूर्णतः परिहार हो जाता है।

**सूक्ष्म साम्पराय-** अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषाय के साथ रहने वाला चारित्र।

**यथाख्यात-** समस्त मोह कर्म का अभाव होने पर प्रकट आत्मा के शान्त स्वरूप में रमण करने रूप चारित्र यथाख्यात चारित्र है।

अब निर्जरा के हेतु तप के बारे में कृपया बताइये ?

अनशनाव-मौदर्य-वृत्ति-परिसंख्यान-रस-परित्याग  
विविक्त-शव्यासन-कायकलेशा बाह्यं तपः ॥ 19 ॥

**अनशन-** चार प्रकार के आहार को सीमित समय अथवा जीवन पर्यन्त के लिये त्याग करना ।

**ऊनोदर-** भूख से कम खाना ।

**वृत्ति परिसंख्यान-** आहार के लिए निकलने वाले मुनि द्वारा आहार सम्बन्धी नियम लेना ।

**रस परित्याग-** भोजन के प्रति आशक्ति घटाने एवं इन्द्रिय विजय के लिये, भोजन में प्रीति बढ़ाने वाले रसों में से कुछ का या सभी का त्याग करना रस परित्याग है ।

**विविक्त शास्त्रासन-** एकान्त स्थान में ध्यान लगाना, शयन करना ।

**काय क्लेश-** शारीरिक कष्टों को सहन करना ।

आभ्यन्तर तप कौन से हैं ?

**प्रायश्चित्त-विनय-वैयाकृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग  
ध्यानान्युत्तरम्॥ 20 ॥**

अभ्यन्तर तप के भेद-

**प्रायश्चित्त-** किये गये अपराधों के शोधन को प्रायश्चित्त तप कहते हैं ।

**विनय-** पूज्य पुरुषों एवं मोक्ष के साधनों के प्रति हार्दिक आदर भाव विनय है।

**वैयावृत्त्य-** गुणों के अनुराग पूर्वक संयमीजनों के खेद को दूर करना।

**स्वाध्याय-** आलस्य के त्याग और ज्ञान की आराधना को स्वाध्याय कहते हैं।

**कायोत्सर्ग-** अहंकार और ममकार का त्याग करना कायोत्सर्ग तप है।

**ध्यान-** मन की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। चित्त का किसी एक विषय को लेकर उसमें लीन होना ध्यान है।

आश्वन्तर तपों के उपभेद भी हैं क्या ?

नव चतु-र्दश-पञ्च-द्वि-भेदा यथाक्रमम्  
प्राग्ध्यानात् ॥ 21 ॥

ध्यान से पहले के पाँच भेदों के अर्थात् प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय और व्युत्सर्ग के क्रमशः नौ, चार, दस और दो भेद हैं।

प्रायश्चित के नौ भेद कौन से हैं ?

आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग  
तपश्छेद-परिहारोप-स्थापनाः ॥ 22 ॥

आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, और उपस्थापना ये प्रायश्चित के नौ भेद हैं।

विनय के चार भेद कौन से हैं ?

ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥ 23 ॥

विनय के चार भेद हैं-ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्र विनय और उपचार विनय।

वैयावृत्य के भेद कौन से हैं ?

आचार्यो-पाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-  
संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥ 24 ॥

आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इस दस प्रकार के मुनियों की सेवा करना सो दस प्रकार की वैयावृत्य है।

स्वाध्याय के कितने भेद हैं ?

वाचना-पृच्छनानु-प्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः ॥ 25 ॥

ग्रन्थों को अर्थ सहित पढ़ना/पढ़ाना ‘वाचना’ है। संशय निवारण या अर्थ के निश्चय के लिए ज्ञानीजनों से पूछना ‘पृच्छना’ है। पढ़े हुए अर्थ का बार-बार विचार करना ‘अनुप्रेक्षा’ है। शुद्धता पूर्वक पाठ करना ‘आम्नाय’ है। धर्मोपदेश करना सुनना या मनन करना ‘धर्मोपदेश’ है। ये स्वाध्याय के पाँच भेद हैं।

व्युत्सर्ग के भेद क्या हैं ?

बाह्याभ्यन्तरो-पथ्योः ॥ 26 ॥

बाह्योपधि व्युत्सर्ग (बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व का त्याग) और आभ्यन्तरोपधि व्युत्सर्ग (आन्तरिक खोटे भावों का त्याग) ये व्युत्सर्ग तप के दो भेद हैं ?

ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तम-संहनन-स्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो-ध्यान-  
मान्त-मुहूर्तात् ॥ 27 ॥

विकल्पों से हटाकर मन को केन्द्रित करना ध्यान

कहलाता है। उत्तम संहनन अर्थात् वज्र वृषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच संहननों वालों को ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक हो सकता है।

ध्यान के कितने भेद हैं ?

आर्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥ 28 ॥

ध्यान चार प्रकार का होता हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान।

किस ध्यान से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ?

परे-मोक्ष-हेतू ॥ 29 ॥

बाद के दो ध्यान-धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

आर्तध्यान किसे कहते हैं ?

आर्त-ममनोज्जस्य-सम्प्रयोगे तद्-विप्रयोगाय-स्मृति-  
समन्वाहारः ॥ 30 ॥

अनिष्ट पदार्थ का संयोग होने पर उसे दूर करने के लिये बार-बार चिन्तवन करना अनिष्ट संयोगज नाम का आर्तध्यान का प्रथम भेद है।

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ 31 ॥

प्रथम प्रकार के आर्तध्यान के विपरीत इष्ट पदार्थों का वियोग हो जाने पर उसकी प्राप्ति के लिए बार-बार विचार करना इष्ट वियोगज नाम का द्वितीय आर्तध्यान है।

वेदनायाश्च ॥ 32 ॥

वेदना होने पर उसको दूर करने के लिये बार-बार चिंतवन करना वेदना जन्य तृतीय आर्तध्यान है।

निदानं च ॥ 33 ॥

भविष्य में विषय भोगों की आकांक्षा के लिये चिन्तित होना निदानज नामक चतुर्थ आर्तध्यान है।

आर्तध्यान किसके होता है ?

तद-विरत-देशविरत-प्रमत्त-संयतानाम् ॥ 34 ॥

आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयत अर्थात् पहले से छठवें गुणस्थान तक के जीवों के होता है।

रौद्र ध्यान क्या है और किसके होता है ?

हिंसा-नृत-स्तेय-विषय संरक्षणेभ्यो रौद्र-मविरत-  
देश-विरतयोः ॥ 35 ॥

हिंसा, झूठ, चोरी और विषय-संरक्षण इन चार वृत्तियों से रौद्र ध्यान होता है। यह ध्यान अविरत और देशविरत गुणस्थानवर्ती जीवों के होता है।

धर्मध्यान का स्वरूप और भेद क्या हैं ?

आज्ञा-पाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥ 36 ॥

धर्म ध्यान के चार भेद हैं। (1) आज्ञाविचय (वीतरागी पुरुषों की धर्म सम्बन्धी आज्ञाओं का चिन्तन) (2) अपायविचय (संसारी जीवों का दुःख कैसे दूर हो इस प्रकार का करुणापूर्ण चिन्तन), (3) विपाकविचय (अपने तथा दूसरों के सुख-दुःख को देखकर कर्म प्रवृत्तियों के स्परूप का चिन्तन करना), (4) संस्थानविचय (तीन लोक के आकार का विचार करना।) अप्रमत्तसंयत मुनि के साक्षात् धर्मध्यान होता है और अविरत, देशविरत और प्रमत्त संयत जीवों के गौण धर्म्य ध्यान होता है।

शुक्ल ध्यान किसके हो सकते हैं ?

शुक्ले-चाद्ये पूर्वविदः ॥ 37 ॥

शुक्ल ध्यान के प्रथम दो भेद पृथक्त्ववितर्क और

एकत्ववितर्क पूर्वज्ञानाधारी श्रुत केवली के होते हैं। श्रुत केवली के धर्मध्यान भी होता है।

परे केवलिनः ॥ 38 ॥

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्ल ध्यान सयोग केवली के और व्युपरतक्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यान अयोगकेवली के होता है।

शुक्ल ध्यान कितने प्रकार का होता है ?

पृथक्-त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति-  
व्युपरत- क्रिया-निवर्त्तनि ॥ 39 ॥

शुक्ल ध्यान चार प्रकार का होता है, पृथकत्ववितर्क, एकत्व-वितर्क, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति, और व्युपरतक्रिया निवर्ति।

शुक्ल ध्यान का आधार क्या है ?

त्र्येक-योग-काय-योगाऽयोगानाम् ॥ 40 ॥

मन, वचन, काययोग वाले जीवों के पृथकत्व वितर्क, तीन योगों में से एक योग वाले जीवों के एकत्व वितर्क, काययोग वाले के सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और योग रहित जीवों के व्युपरत क्रियानिवर्ति शुक्ल ध्यान होता है।

पहले दो भेदों की विशेषता-

एकाश्रये-सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥ 41 ॥

पहले के दो ध्यान एक आश्रय वाले 'सवितर्क' और 'सवीचार' होते हैं।

वितर्क और वीचार सहित पृथक्त्व वितर्क और एकत्ववितर्क ये दो शुक्लध्यान परिपूर्ण श्रुत ज्ञानधारी जीव के होते हैं।

किन्तु-

अवीचारं द्वितीयम् ॥ 42 ॥

दूसरा शुक्लध्यान वीचार रहित है

वितर्क किसे कहते हैं ?

वितर्कः श्रुतम् ॥ 43 ॥

श्रुत ज्ञान को वितर्क कहते हैं।

विचार किसे कहते हैं ?

वीचारोऽर्थं व्यञ्जन-योग संक्रान्तिः ॥ 44 ॥

अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति (परिवर्तन) को वीचार कहते हैं।

पात्र के भेद से निर्जरा में भी कमीवेशी होती है ?  
 सम्यगदृष्टि-श्रावक-विरतानन्त-वियोजक-दर्शन मोह  
 क्षपकोप शमकोप शान्त मोह-क्षपक-क्षीण मोह-  
 जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुण निर्जराः ॥ 45 ॥

सम्यगदृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी का  
 विसंयोजक, दर्शन मोह को क्षय करने वाला, चारित्र मोह  
 का उपशम करने वाला, उपशान्त मोह वाला, क्षपक क्षीण  
 मोह और जिनेन्द्र भगवान् इन सबके क्रमसे असंख्यात्  
 गुणी निर्जरा होती है ।

दिगम्बर मुनि कितने प्रकार के होते हैं ?  
 पुलाक-बकुश-कुशील-निर्गन्थ-स्नातका  
 निर्गन्थाः ॥ 46 ॥

पुलाकमुनि (उत्तर गुणों की भावना से जो रहित हों  
 तथा जिनके मूलगुणों में भी कभी-कभी दोष लग जाता  
 हो) बकुश मुनि (जो मूल गुणों का निर्दोष पालन करते  
 हों, लेकिन शरीर और उपकरणों की शोभा बढ़ाने की  
 इच्छा रखते हों), कुशील मुनि (इनके दो भेद हैं-

प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील । प्रतिसेवना कुशील वे हैं जो उपकरण शरीर आदि से पूर्ण विरक्त न हों, मूल और उत्तर गुणों की कभी-कभी जिनसे विराधना हो जाती हो । कषाय कुशील वे हैं जिनके केवल संज्वलन कषाय का ही उदय हो), निर्गन्ध मुनि (वे हैं जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होने वाला हो) और स्नातक मुनि (केवली भगवान) इन पाँचों ही प्रकार के साधुओं को नैगम आदि नय की अपेक्षा से निर्गन्ध कहते हैं ।

क्या पुलाक आदि मुनियों के और भी भेद हैं ?

संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिंग-लेश्योप-पाद-  
स्थान विकल्पतः साध्याः ॥ 47 ॥

संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगों के द्वारा पुलाक आदि मुनियों में परस्पर भेद होते हैं ।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ 9 ॥

## दशम अध्याय

( मोक्ष तत्त्व का वर्णन )

केवलज्ञान कब उत्पन्न होता है ?

मोह-क्षयाज्-ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च  
केवलम् ॥ 1 ॥

मोहनीय कर्म के क्षय होने पर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म क्षय होने से तथा तीन आयु और नाम कर्म की तेरह प्रकृतियों (अर्थात् कुल त्रेसठ प्रकृतियों) के क्षय होने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

मोक्ष का स्वरूप क्या है ?

बन्ध-हेत्व-भाव निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्र-  
मोक्षो-मोक्षः ॥ 2 ॥

संवर (बन्ध के कारणों का अभाव) और निर्जरा के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों के नाश हो जाने को मोक्ष कहते हैं।

क्या द्रव्य कर्मों के क्षय से मोक्ष होता है या अन्य  
का क्षय भी होता है ?

औपशमिकादि भव्यत्वानां-च ॥ 3 ॥

केवल द्रव्य कर्मों के क्षय से मोक्ष नहीं होता वरन् उसके साथ औपशमिक, औदयिक, क्षयोपशमिक और भव्यत्व इन चार भावों के क्षय होने से मोक्ष होता है।

मोक्ष में किन भावों का क्षय नहीं होता ?

अन्यत्र केवल-सम्यक्त्व ज्ञान-  
दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥ 4 ॥

केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवल दर्शन और सिद्धत्व इन चार भावों का मोक्ष में क्षय नहीं होता है।

कर्मों का क्षय होने के बाद क्या होता है ?

तदनन्तर मूर्ध्वं गच्छत्या लोकान्तात् ॥ 5 ॥

समस्त कर्मों का पूर्ण क्षय हो जाने के बाद जीव लोक के अन्तिम भाग तक ऊपर को जाता है।

जीव ऊपर को क्यों जाता है ?

पूर्वप्रयोगा-दसङ्गत्वाद् बन्धच्-छेदात्-तथागति  
परिणामाच्-च ॥ 6 ॥

पूर्व संस्कार से, सङ्गरहित होने से, बन्ध का नाश हो जाने से तथा वैसा स्वभाव (ऊर्ध्वं गमन करने का) होने से मुक्त जीव ऊपर को जाता है।

कोई दृष्टान्त देकर समझाइये ?

आविष्ट-कुलाल-चक्रवट-व्यपगत-लेपालाम्बु-  
वदेरण्ड बीज-वदग्नि-शिखावच्च ॥ 7 ॥

जैसे कुम्हार का चाक एक बार घुमा देने पर पूर्व संस्कार से धूमता रहता है, वैसे ही यह जीव पूर्व संस्कार से ऊर्ध्व गमन करता है।

मिट्टी के लेप सहित तुम्बी जल में ढूब जाती है परन्तु मिट्टी गल जाने पर वह तुम्बी ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार कर्ममल से मुक्त होने पर जीव ऊपर की ओर जाता है।

जिस प्रकार एरण्ड का बीज फली के फटने पर ऊपर को जाता है, उसी प्रकार जीव बन्धन मुक्त होने पर ऊपर को जाता है।

जिस प्रकार अग्नि की शिखा स्वभाव से ऊपर को जाती है, उसी प्रकार जीव भी स्वभाव से ऊर्ध्व गमन करता है।

ऊर्ध्व गमन करते-करते जीव आलोकाकाश में

क्यों नहीं चला जाता है ?

धर्मस्तिकाया-भावात् ॥ 8 ॥

जीव और पुद्गल का गमन धर्म द्रव्य की सहायता से होता है। आगे धर्म द्रव्य का अभाव होने से जीव लोक के अग्रभाग में जाकर ठहर जाता है, आगे नहीं जाता। अलोकाकाश में धर्म द्रव्य का अभाव है।

मुक्त जीवों में भी कोई भेद होते हैं क्या ?

क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येक-बुद्ध  
बोधित-ज्ञानावगाह-नान्तर संख्याल्प बहुत्वतः  
साध्याः ॥ 9 ॥

क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या, और अल्प बहुत्व। इनके द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं।

इति श्री उमास्वामि विरचिते मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ 10 ॥

अक्षर-मात्र-पद-स्वर-हीनं व्यंजन संधि विवर्जितरेफम् ।

साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे ॥ 1 ॥

दशाध्याये परिच्छन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।

फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनि पुंगवैः ॥ 2 ॥

तत्त्वार्थ सूत्र कर्त्तरं गृदधिपच्छोपलक्षितं ।

वन्दे गणीन्द्र - संजात - मुमास्वामि मुनीश्वरं ॥ 3 ॥

इति तत्त्वार्थ सूत्रापरनाम तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रं समाप्तम् ।

## तत्त्वार्थ सूत्र

( आचार्य भगवन् श्रीमद् उमास्वामि विरचित )

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म भूभृताम् ।

ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वर्दे तदगुण लब्धये ॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-मार्गः ॥ 1 ॥ तत्त्वार्थ - श्रद्धानं

सम्यग्दर्शनम् ॥ 2 ॥ तन्-निसर्गा-दधिगमाद्- वा ॥ 3 ॥ जीवा-

जीवास्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्-तत्त्वम् ॥ 4 ॥ नाम-

स्थापना-द्रव्य-भावतस्-तन्-न्यासः ॥ 5 ॥ प्रमाण-नयै-

रधिगमः ॥ 6 ॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधि-करण-स्थिति-

विधानतः ॥ 7 ॥ सत्-संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प  
 बहुत्वैश्च ॥ 8 ॥ मति-श्रुतावधि-मनः पर्यय-केवलानि-ज्ञानम् ॥  
 9 ॥ तत्प्रमाणे ॥ 10 ॥ आद्ये परोक्षम् ॥ 11 ॥ प्रत्यक्ष-मन्यत् ॥  
 12 ॥ मतिःस्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभि-निबोध इत्य-नर्थान्तरम् ॥  
 13 ॥ तदिन्द्रिया-निन्द्रिय-निमित्तम् ॥ 14 ॥ अवग्रहे-हावाय  
 धारणाः ॥ 15 ॥ बहु-बहुविधि-क्षिप्रा-निः सृता-नुक्त-ध्रुवाणां  
 सेतराणाम् ॥ 16 ॥ अर्थस्य ॥ 17 ॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ 18 ॥ न  
 चक्षु-रनिन्द्रियाभ्याम् ॥ 19 ॥ श्रुतं मति पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-  
 भेदम् ॥ 20 ॥ भव प्रत्ययोऽवधि-देव-नारकाणाम् ॥ 21 ॥  
 क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥ 22 ॥ ऋजु-  
 विपुलमती मनः पर्ययः ॥ 23 ॥ विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्-  
 विशेषः ॥ 24 ॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनः  
 पर्यययोः ॥ 25 ॥ मति-श्रुतयो-र्निबन्धो-द्रव्येष्व-सर्व-पर्यायेषु ॥  
 26 ॥ रूपिष्ववधेः ॥ 27 ॥ तदनन्त-भागे मनः पर्ययस्य ॥ 28 ॥  
 सर्वं द्रव्यं पर्यायेषु केवलस्य ॥ 29 ॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदे-  
 कस्मिन्ना-चतुर्भ्यः ॥ 30 ॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ 31 ॥ सद-  
 सतो-रविशेषाद्-यदृच्छेप-लब्धे-रूप्नमत्तवत् ॥ 32 ॥ नैगम-संग्रह-  
 व्यवहा-र्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढै-वंभूता नयाः ॥ 33 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ 1 ॥

औपशमिक-क्षायिकौ-भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-  
मौदयिक-पारिणामिकौ च ॥ 1 ॥ द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-  
त्रि-भेदा यथा-क्रमम् ॥ 2 ॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥ 3 ॥ ज्ञान-  
दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥ 4 ॥ ज्ञाना-ज्ञान-  
दर्शन-लब्ध्यश-चतुस्-त्रि-त्रि-पञ्च भेदाः सम्यक्त्व चारित्र-  
संयमा-संयमाश्च ॥ 5 ॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-  
संयता-सिद्ध-लेश्याश-चतुश-चतुस्-त्र्ये-कै-कै-कैक-षड्  
भेदाः ॥ 6 ॥ जीव-भव्या-भव्यत्वानि च ॥ 7 ॥ उपयोगो लक्षणम्  
॥ 8 ॥ स द्वि-विधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥ 9 ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥  
10 ॥ समनस्काऽमनस्काः ॥ 11 ॥ संसारिणस्-त्रस-स्थावराः ॥  
12 ॥ पृथि-व्यप्-तेजो वायु वनस्पतयः स्थावराः ॥ 13 ॥  
द्वीन्द्रियादयस्-त्रसाः ॥ 14 ॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥ 15 ॥ द्वि-विधानि  
॥ 16 ॥ निर्वृत्युप-करणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ 17 ॥ लब्ध्युप-योगौ  
भावेन्द्रियम् ॥ 18 ॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि ॥ 19 ॥  
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्-तदर्थाः ॥ 20 ॥ श्रुत-  
मनिन्द्रियस्य ॥ 21 ॥ वनस्पत्यन्ताना-मेकम् ॥ 22 ॥ कृमि-  
पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि ॥ 23 ॥ संज्ञिनः  
समनस्काः ॥ 24 ॥ विग्रह-गतौ कर्म-योगः ॥ 25 ॥ अनुश्रेणि  
गतिः ॥ 26 ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ 27 ॥ विग्रहवती च संसारिणः  
प्राक् चतुर्भ्यः ॥ 28 ॥ एक समयाविग्रहा ॥ 29 ॥ एकं द्वौ-त्रीन्-

वा-नाहारकः ॥ 30 ॥ सम्मूच्छ्नं गर्भोपपादा जन्म ॥ 31 ॥ सचित्-  
शीत्-संवृत्ताः सेतरा मिश्राश-चैकशस्-तद्योनयः ॥ 32 ॥ जरायु-  
जाण्डज पोतानां गर्भः ॥ 33 ॥ देव-नारकाणा-मुपपादः ॥ 34 ॥  
शेषाणां सम्मूच्छ्नम् ॥ 35 ॥ औदारिक-वैक्रियि-काहारक-  
तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥ 36 ॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥ 37 ॥  
प्रदेशतोऽसंख्ये-गुणं प्राक्-तैजसात् ॥ 38 ॥ अनन्त-गुणे परे ॥  
39 ॥ अप्रतीघाते ॥ 40 ॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥ 41 ॥ सर्वस्य ॥  
42 ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदे-कस्मिन्ना-चतुर्भ्यः ॥ 43 ॥  
निरुपभोग-मन्त्यम् ॥ 44 ॥ गर्भ-सम्मूच्छ्नज-माद्यम् ॥ 45 ॥  
औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ 46 ॥ लब्धि-प्रत्ययं -च ॥ 47 ॥  
तैजस-मपि ॥ 48 ॥ शुभं विशुद्धं-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त  
संयतस्यैव ॥ 49 ॥ नारक-सम्मूच्छ्निनो नपुंसकानि ॥ 50 ॥ न-  
देवाः ॥ 51 ॥ शेषास्-त्रिवेदाः ॥ 52 ॥ औपपादिक-चरमोत्तम-  
देहा-संख्ये-वर्षायुषोऽनप-वर्त्यायुषः ॥ 53 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ 2 ॥

रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो महातमः प्रभा-भूमयो  
घनाम्बु-वाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ 1 ॥ तासु त्रिंशत्-  
पञ्च-विंशति पञ्चदश-दश त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शतसहस्राणि  
पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ 2 ॥ नारका नित्या-शुभतर-लेश्या-

परिणाम देह-वेदना-विक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परो-दीरित दुःखाः ॥  
 ४ ॥ संक्लिष्टा-सुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक्-चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥ तेष्वेक-  
 त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्-त्रिंशत्-सागरोपमा  
 सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ जम्बूद्वीप-लवणो-दादयःशुभ-  
 नामानो द्वीप-समुद्राः ॥ ७ ॥ द्वि-द्वि-विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-  
 परिक्षेपिणो वलया-कृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्ये मेरु-नाभि-वृत्तो  
 योजन-शत-सहस्र विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरत-हैमवत-हरि-  
 विदेह-रम्यक-हैरण्य-वतैरावत-वर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥ तद्  
 विभाजिनः पूर्वा-परायता हिमवन्-महाहिमवन् निषध-नील-  
 रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुन-तपनीय-  
 वैदूर्य-रजत-हेममयाः ॥ १२ ॥ मणि-विचित्र-पाश्चा-उपरि मूले  
 च तुल्य-विस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केशरि-महा-  
 पुण्डरीक-पुण्डरीका हृदास्-तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजन-  
 सहस्रायामस्-तदद्व्य-विष्कम्भो हृदः ॥ १५ ॥ दश-योजनाव-  
 गाहः ॥ १६ ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥ तद्-द्वि-गुण-द्वि-  
 गुणा-हृदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्-निवासिन्यो देव्यः श्री  
 ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपम-स्थितयः सप्तामानिक  
 परिषत्काः ॥ १९ ॥ गङ्गा-सिन्धु-रोहिदो-हितास्या-हरिद्-धरि-  
 कान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-सूर्य-कूला-  
 रक्ता रक्तोदा: सरितस्-तन्-मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयो द्वयोः पूर्वाः

पूर्वगाः ॥ 21 ॥ शेषास्-त्व-परगाः ॥ 22 ॥ चतुर्दश-नदी-सहस्र-  
परिवृता-गंगा सिन्धवादयो-नद्यः ॥ 23 ॥ भरतः षड्-विंशति-  
पञ्च-योजन-शत-विस्तारः षट्-चैकोन-विंशति-भागा योजनस्य ॥  
24 ॥ तद्-द्वि-गुण-द्वि-गुण-विस्तारा वर्षधर- वर्षा विदेहान्ताः ॥  
25 ॥ उत्तरा-दक्षिण-तुल्याः ॥ 26 ॥ भरतैरावतयो-वृद्धि-ह्लासौ  
षट्-समयाभ्या मुत्सर्पिण्य-वसर्पिणीभ्याम् ॥ 27 ॥ ताभ्या-  
मपरा-भूमयोऽवस्थिताः ॥ 28 ॥ एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो  
हैमवतक हारिवर्षक-दैव-कुरवकाः ॥ 29 ॥ तथोत्तराः ॥ 30 ॥  
विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥ 31 ॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य  
नवति-शत-भागः ॥ 32 ॥ द्वि-र्धातकी-खण्डे ॥ 33 ॥ पुष्कराद्द्वे  
च ॥ 34 ॥ प्राढ्-मानुषोत्तरान्-मनुष्याः ॥ 35 ॥ आर्या म्लेच्छाश्र  
॥ 36 ॥ भरतै-रावत-विदेहाः कर्मभूमियोऽन्यत्र देव-कुरुतर  
कुरुभ्यः ॥ 37 ॥ नृ-स्थिति परावरे त्रि-पल्योपमान्त-मुहूर्ते ॥ 38 ॥  
तिर्यग-योनिजानां-च ॥ 39 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ 3 ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ 1 ॥ आदितस्-त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥ 2 ॥  
दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोप-पन्न-पर्यन्ताः ॥ 3 ॥  
इन्द्र-सामानिक-त्रायस्-त्रिंश-पारिषदात्म-रक्षलोक-पालानीक  
-प्रकीर्ण-काभियोग्य-किल्विषिकाश-चैकशः ॥ 4 ॥ त्रायस्-

त्रिंश-लोकपाल-वज्या-व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयो-  
 द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्श-  
 रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥ ८ ॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवन-  
 वासिनोऽसुर-नाग-विद्युत्-सुपर्णांगिन वात-स्तनितो-दधि-द्वीप-  
 दिक्कुमाराः ॥ १० ॥ व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व  
 यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्य-चन्द्रमसौ  
 ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-  
 गतयो नृ-लोके ॥ १३ ॥ तत्-कृतः काल-विभागः ॥ १४ ॥ बहि-  
 रवस्थिताः ॥ १५ ॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोप-पन्नाः  
 कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥ सौधर्मेशान-सानत्कुमार  
 माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-  
 सहस्रा-रेष्वानत-प्राणतयो-रारणा-च्युतयो-र्नवसु ग्रैवेयकेषु  
 विजय वैजयन्त जयन्ता-पराजितेषु सर्वथर्थ-सिद्धौ च ॥ १९ ॥  
 स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रिया-वधि-  
 विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥ गति-शरीर-परिग्रहाभि-मानतो हीनाः ॥  
 २१ ॥ पीत-पद्म-शुल्क-लेश्या-द्वि-त्रि-शेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्-  
 ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥ ब्रह्म लोकालया लौकान्तिकाः ॥  
 २४ ॥ सारस्वतादित्य-वहन्यरुण-गर्दतोय-तुषिता व्याबाधा-  
 रिष्टाश-च ॥ २५ ॥ विजयादिषु द्वि-चरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिक-  
 मनुष्येभ्यः शेषास्-तिर्यग्-योनयः ॥ २७ ॥ स्थिति-रसुर-नाग-

सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरो पम-त्रिपल्योप-मार्द्ध-हीन-  
मिताः ॥ 28 ॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ 29 ॥  
सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥ 30 ॥ त्रि-सप्त-नवैकादश-  
त्रयोदश-पञ्चदशभि-रथिकानि तु ॥ 31 ॥ आरणाच्युता-दूर्ध्व-  
मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥ 32 ॥ अपरा  
पल्योपम-मधिकम् ॥ 33 ॥ परतः परतः पूर्वा पूर्वानन्तरा ॥ 34 ॥  
नारकाणां-च द्वितीयादिषु ॥ 35 ॥ दश-वर्ष सहस्राणि प्रथमायाम् ॥  
36 ॥ भवनेषु च ॥ 37 ॥ व्यन्तराणां-च ॥ 38 ॥ परा पल्योपम-  
मधिकम् ॥ 39 ॥ ज्योतिष्काणां च ॥ 40 ॥ तदष्टृ-भागोऽपरा ॥ 41 ॥  
लौकान्तिकाना-मष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ 42 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥

अजीव-काया-धर्मा-धर्माकाश-पुद्गलाः ॥ 1 ॥ द्रव्याणि ॥ 2 ॥  
जीवाश्च ॥ 3 ॥ नित्यावस्थितान्य रूपाणि ॥ 4 ॥ रूपिणः  
पुद्गलाः ॥ 5 ॥ आ आकाशा-देक द्रव्याणि ॥ 6 ॥ निष्क्रियाणि  
च ॥ 7 ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकं जीवानाम् ॥ 8 ॥  
आकाशस्या-नन्ताः ॥ 9 ॥ संख्येया-संख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥  
10 ॥ नाणोः ॥ 11 ॥ लोकाकाशेऽव गाहः ॥ 12 ॥ धर्माधर्मयोः  
कृत्स्ने ॥ 13 ॥ एक-प्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ 14 ॥

असंख्येय-भागादिषु-जीवानाम् ॥ 15 ॥ प्रदेश-संहार विसर्पाभ्यां  
 प्रदीपवत् ॥ 16 ॥ गति-स्थित्युप-ग्रहौ धर्माधर्मयो-रूपकारः ॥  
 17 ॥ आकाशस्यावगाहः ॥ 18 ॥ शरीर-वाङ्मनः प्राणापानाः  
 पुद्गलानाम् ॥ 19 ॥ सुख दुःख- जीवित-मरणोप-ग्रहाश्च ॥ 20 ॥  
 परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ 21 ॥ वर्तना-परिणाम क्रियाः परत्वा  
 परत्वे च कालस्य ॥ 22 ॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥  
 23 ॥ शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद तमश-छाया-  
 तपो-द्योत-वन्तश्च ॥ 24 ॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥ 25 ॥ भेद-  
 संघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥ 26 ॥ भेदा-दणुः ॥ 27 ॥ भेद-सङ्घाताभ्यां  
 चाक्षुषः ॥ 28 ॥ सद्-द्रव्य-लक्षणम् ॥ 29 ॥ उत्पाद-व्यय-धौव्य-  
 युक्तंसत् ॥ 30 ॥ तद्-भावाव्ययं नित्यम् ॥ 31 ॥ अर्पिता-नर्पित  
 सिद्धेः ॥ 32 ॥ स्निग्ध-स्फूर्त्वाद् बन्धः ॥ 33 ॥ न जघन्य-  
 गुणानाम् ॥ 34 ॥ गुण साम्ये सदृशानाम् ॥ 35 ॥ द्रुय-धिकादि-  
 गुणानां तु ॥ 36 ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ 37 ॥ गुण-  
 पर्ययवद् द्रव्यम् ॥ 38 ॥ कालश्च ॥ 39 ॥ सोऽनन्त समयः ॥ 40 ॥  
 द्रव्याश्रया निर्गुणा-गुणाः ॥ 41 ॥ तद्-भावः परिणामः ॥ 42 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ 5 ॥

काय-वाङ् मनः कर्म योगः ॥ 1 ॥ स आस्त्रवः ॥ 2 ॥ शुभः  
 पुण्यस्या-शुभः पापस्य ॥ 3 ॥ सकषाया-कषाययोः साम्परायि-

केर्या-पथयोः ॥ 4 ॥ इन्द्रिय-कषाया-व्रत-क्रियाः पञ्च चतुः  
 पञ्च पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ 5 ॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाता-  
 ज्ञात भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्-तद्-विशेषः ॥ 6 ॥  
 अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ 7 ॥ आद्यं-संरम्भ-समारम्भारम्भ-  
 योग-कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्-त्रिस्-त्रिस्-त्रिश-  
 चतुश्शैकशः ॥ 8 ॥ निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा-द्वि-चतु-  
 द्वि-त्रि-भेदाः परम् ॥ 9 ॥ तत्प्रदोष-निह्वव-मात्सर्यान्तराया-  
 सादनोपधाता-ज्ञान-दर्शना-वरणयोः ॥ 10 ॥ दुःख-शोक-  
 तापाक्रन्दन-वध-परिदेव-नान्यात्म-परोभय-स्थानान्य-सद्-  
 वेद्यस्य ॥ 11 ॥ भूत-व्रत्यनु-कम्पादान-सराग-संयमादि-योगः  
 क्षान्तिः शौच-मिति सद्-वेद्यस्य ॥ 12 ॥ केवलि-श्रुत-संघ-  
 धर्म-देवावर्ण-वादो दर्शन मोहस्य ॥ 13 ॥ कषायोदयात्-तीव्र-  
 परिणामश-चारित्र मोहस्य ॥ 14 ॥ बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं  
 नारकस्यायुषः ॥ 15 ॥ माया तैर्यग-योनस्य ॥ 16 ॥ अल्पारम्भ-  
 परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ 17 ॥ स्वभाव-मार्दवं-च ॥ 18 ॥ निःशील  
 व्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ 19 ॥ सराग-संयम-संयमासंयमा-  
 कामनिर्जरा-बाल-तपांसि दैवस्य ॥ 20 ॥ सम्यक्त्वं-च ॥ 21 ॥  
 योग-वक्रता विसंवादनं-चा शुभस्य नाम्नः ॥ 22 ॥ तद्-विपरीतं  
 शुभस्य ॥ 23 ॥ दर्शनविशुद्धि -र्विनयसम्पन्नता शील-व्रतेष्व-  
 नतीचारोऽभीक्षण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तिस् त्याग-तपसी

साधु-समाधि-वैयावृत्यकरण मर्हदाचार्य-बहुश्रुत प्रवचन-  
भक्ति-रावश्यका-परिहाणि- मार्ग प्रभावना प्रवचन-वत्सलत्व-  
मिति तीर्थकर-त्वस्य ॥ 24 ॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे सद-  
सद्गुणोच्छादनोद्-भावने च नीचै-गोत्रस्य ॥ 25 ॥ तद्-विपर्ययो  
नीचै-वृत्यनुत्सेकौ-चोत्तरस्य ॥ 26 ॥ विघ्नकरण-मन्तरायस्य ॥  
27 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ 6 ॥

हिंसाऽनृत-स्तेया-ब्रह्म-परिग्रहे भ्यो-विरति-व्रतम् ॥ 1 ॥  
देशसर्वतोऽणुमहती ॥ 2 ॥ तत्-स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ 3 ॥  
वाड् मनो-गुप्तीर्या-दान-निक्षेपण-समित्या-लोकित-पान-  
भोजनानि पञ्च ॥ 4 ॥ क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य प्रत्याख्या-  
नान्य-नुवीचि भाषणं च पञ्च ॥ 5 ॥ शून्यागार-विमोचितावास-  
परोपरोधाकरण-भैक्ष्य-शुद्धि-सर्धर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥ 6 ॥  
स्त्री-राग-कथा-श्रवण तन्-मनोहराङ्गनिरीक्षण-पूर्वतानु-स्परण  
वृष्ट्येष्ट-रस स्वशरीर-संस्कार त्यागाः पञ्च ॥ 7 ॥ मनोज्ञा-  
मनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च ॥ 8 ॥ हिंसा-  
दिष्विहा-मुत्रापाया-वद्य दर्शनम् ॥ 9 ॥ दुःखमेव वा ॥ 10 ॥ मैत्री-  
प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिक  
किलश्यमाना-विनयेषु ॥ 11 ॥ जगत्-काय-स्वभावौ वा संवेग

वैराग्यार्थम् ॥ 12 ॥ प्रमत्त-योगात् प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥ 13 ॥  
 असद-भिधान-मनृतम् ॥ 14 ॥ अदत्ता-दानं स्तेयम् ॥ 15 ॥ मैथुन-  
 मब्रह्म ॥ 16 ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ 17 ॥ निः शल्यो व्रती ॥ 18 ॥  
 अगार्य-नगारश्च ॥ 19 ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥ 20 ॥ दिग्देशा-  
 नर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोप-वासोप-भोग-परिभोग  
 परिमाणा-तिथि संविभाग व्रत सम्पन्नश्च ॥ 21 ॥ मारणान्तिकीं  
 सल्लेखनां जोषिता ॥ 22 ॥ शङ्का-कांक्षा-विचिकित्सान्य दृष्टि  
 प्रशंसा-संस्तवाः सम्यगदृष्टे-रतिचाराः ॥ 23 ॥ व्रत-शीलेषु पञ्च  
 पञ्च यथाक्रमम् ॥ 24 ॥ बन्ध-वधच्छेदाति-भारा-रोपणान्न-पान-  
 निरोधाः ॥ 25 ॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेख-क्रिया-  
 न्यासापहार-साकार-मंत्र भेदाः ॥ 26 ॥ स्तेन-प्रयोग-तदा-  
 हृतादान-विरुद्ध-राज्यातिक्रम-हीनाधिक मानोन्मान-  
 प्रतिरूपक-व्यवहाराः ॥ 27 ॥ पर-विवाह-करणोत्वरिका-  
 परिगृहीता-परिगृहीता-गमना-नङ्ग क्रीडा-काम तीव्रा  
 भिनिवेशाः ॥ 28 ॥ क्षेत्र-वास्तु-हिरण्य-सुवर्ण-धन-धान्य-  
 दासी-दास-कुप्य-भाण्ड प्रमाणाति-क्रमाः ॥ 29 ॥ ऊर्ध्वाधिस्-  
 तिर्यग्व्यतिक्रम क्षेत्र-वृद्धि-स्मृत्यन्त-राधानानि ॥ 30 ॥ आनयन-  
 प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात पुद्गलक्षेपाः ॥ 31 ॥ कन्दर्प-  
 कौत्कुच्य-मौखर्या समीक्ष्याधि- करणोपभोग- परिभोगा-  
 नर्थक्यानि ॥ 32 ॥ योग दुःप्रणिधाना नादर स्मृत्यनुप-स्थानानि ॥

33 ॥ अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गा-दान-संस्तरोप-क्रमणा-  
नादर-स्मृत्यनुप-स्थानानि ॥ 34 ॥ सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्रा-  
भिषव-दुः पववाहाराः ॥ 35 ॥ सचित्त-निक्षेपापिधान-परव्यपदेश  
मात्सर्य कालातिक्रमाः ॥ 36 ॥ जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-  
सुखानुबन्ध-निदानानि ॥ 37 ॥ अनुग्रहार्थ स्वास्यातिसर्गो दानम्  
॥ 38 ॥ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्-तद्-विशेषः ॥ 39 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ 7 ॥

मिथ्यादर्शना-विरतिप्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥ 1 ॥  
सकषायत्वाज्-जीवः कर्मणो योग्यान्-पुद्गला-नादत्ते स  
बन्धः ॥ 2 ॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्-तद्-विधयः ॥ 3 ॥  
आद्यो-ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायु-र्नाम-  
गोत्रान्तरायाः ॥ 4 ॥ पञ्च-नव-द्वयष्टा-विंशति-चतु-द्विः-  
चत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ॥ 5 ॥ मति-श्रुतावधि-  
मनःपर्यय-केवलानाम् ॥ 6 ॥ चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलानां निद्रा  
निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यान-गृद्धयश्च ॥ 7 ॥ सद-  
सद्-वेद्ये ॥ 8 ॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीया-कषाय-कषाय-  
वेदनीया-ख्यास्-त्रि-द्वि-नव-घोडश-भेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व  
तदुभ-यान्य- कषाय-कषायौ-हास्य-रत्य-रति-शोक-भय-  
जुगुप्सा- स्त्री-पुन्- नपुंसक-वेदा अनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यान-

प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश-चैकशः क्रोध-मान-माया-  
लोभाः ॥ 9 ॥ नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥ 10 ॥ गति-  
जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान संहनन  
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णा-नुपूर्व्या- गुरुलघूपघात-परघाता-  
तपोद्योतोच्छ्वास- विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-  
सुस्वर-शुभ सूक्ष्मपर्यामि स्थिरादेय-यशः कीर्ति-सेतराणि  
तीर्थकरत्वं च ॥ 11 ॥ उच्चै-र्नीचैश्च ॥ 12 ॥ दान-लाभ-  
भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥ 13 ॥ आदितस्-तिसृणा-मन्तरायस्य  
च त्रिंशत्-सागरोपम-कोटी-कोट्यः परा स्थितिः ॥ 14 ॥ सप्तति-  
मौहनीयस्य ॥ 15 ॥ विंशति-नाम-गोत्रयोः ॥ 16 ॥ त्रयस्-त्रिंशत्-  
सागरोप-माण्यायुषः ॥ 17 ॥ अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥  
18 ॥ नाम-गोत्रयो-रष्टौ ॥ 19 ॥ शेषाणा मन्तर्मुहूर्ता ॥ 20 ॥  
विपाकोऽनुभवः ॥ 21 ॥ स यथा नाम ॥ 22 ॥ ततश्च निर्जरा ॥  
23 ॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतो योग-विशेषात् सूक्ष्मैक-क्षेत्राव-गाह-  
स्थिताः सर्वात्म प्रदेशेष्व-नन्तानन्त प्रदेशाः ॥ 24 ॥ सद्-वेद्य-  
शुभायु-नाम-गोत्राणि-पुण्यम् ॥ 25 ॥ अतोऽन्यत्-पापम् ॥ 26 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ॥ 8 ॥

आस्वव निरोधः संवरः ॥ 1 ॥ स-गुस्मि-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-  
परीषहजय-चारित्रैः ॥ 2 ॥ तपसा निर्जरा च ॥ 3 ॥ सम्यग्योग-

निग्रहो गुसिः ॥ 4 ॥ ईर्या-भाषेषणा-दान-निक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥  
 5 ॥ उत्तम-क्षमा-मार्द-वार्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-स्त्यागा-  
 किंचन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ 6 ॥ अनित्या-शरण-संसारै-  
 कत्वा-न्यत्वा-शुच्यास्त्रव संवर निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्म-  
 स्वाख्या-तत्त्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥ 7 ॥ मार्गाच्यवन-  
 निर्जरार्थ-परिषोढव्याः परीषहाः ॥ 8 ॥ क्षुत्-पिपासा-शीतोष्णा-  
 दंशमशक-नागन्या-रति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शस्या-क्रोश-वध-  
 याचनालाभ रोग-तृणस्पर्श-मल सत्कार पुरस्कार-प्रज्ञाज्ञाना-  
 दर्शनानि ॥ 9 ॥ सूक्ष्म-साम्पराय-छद्मस्थ वीतरागयोश-चतुर्दश ॥  
 10 ॥ एकादश जिने ॥ 11 ॥ बादर साम्पराये सर्वे ॥ 12 ॥ ज्ञानावरणे  
 प्रज्ञाज्ञाने ॥ 13 ॥ दर्शन-मोहान्तराययो-रदर्शना-लाभौ ॥ 14 ॥  
 चारित्रमोहे नागन्या-रति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कार  
 पुरस्काराः ॥ 15 ॥ वेदनीये शेषाः ॥ 16 ॥ एकादयो भाज्या-  
 युगपदे-कस्मिन्-नैकोन विंशतेः ॥ 17 ॥ सामायिकच्छेदोप-  
 स्थापना-परिहार विशुद्धि सूक्ष्म-साम्पराय यथाख्यात-मिति  
 चारित्रम् ॥ 18 ॥ अनशनाव-मौदर्य-वृत्ति-परिसंख्यान-रस-  
 परित्याग विविक्त-शस्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ 19 ॥  
 प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग ध्यानान्युत्तरम् ॥  
 20 ॥ नव चतुर्दश-पञ्च-द्वि-भेदा यथाक्रमम् प्राग्ध्यानात् ॥ 21 ॥  
 आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग तपश्छेद-

परिहारोप-स्थापनाः ॥ 22 ॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥ 23 ॥  
 आचार्यो-पाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-सङ्घ-  
 साधु-मनोज्ञानाम् ॥ 24 ॥ वाचना-पृच्छनानु-प्रेक्षाम्नाय  
 धर्मोपदेशाः ॥ 25 ॥ बाह्याभ्यन्तरे-पथ्योः ॥ 26 ॥ उत्तम-संहनन-  
 स्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो-ध्यान-मान्त-मुहूर्तात् ॥ 27 ॥ आर्ति-  
 रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ॥ 28 ॥ परे-मोक्ष-हेतू ॥ 29 ॥ आर्ति-  
 ममनोज्ञस्य-सप्तयोगे तद्-विप्रयोगाय-स्मृति-समन्वाहारः ॥ 30 ॥  
 विपरींत मनोज्ञस्य ॥ 31 ॥ वेदनायाश्च ॥ 32 ॥ निदानं च ॥ 33 ॥  
 तद्-विरत-देशविरत-प्रपत्त-संयतानाम् ॥ 34 ॥ हिंसा-नृत-स्तेय-  
 विषय संरक्षणेभ्यो रौद्र-मविरत- देश-विरतयोः ॥ 35 ॥ आज्ञा-  
 पाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥ 36 ॥ शुक्ले-चाद्ये  
 पूर्वविदः ॥ 37 ॥ परे केवलिनः ॥ 38 ॥ पृथक्-त्वैकत्व-वितर्क-  
 सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत- क्रिया-निवर्तीनि ॥ 39 ॥ त्र्येक-  
 योग-काय-योगाऽयोगानाम् ॥ 40 ॥ एकाश्रये-सवितर्क-  
 वीचारे पूर्वे ॥ 41 ॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥ 42 ॥ वितर्कः श्रुतम् ॥  
 43 ॥ वीचारोऽर्थ व्यञ्जन-योग संक्रान्तिः ॥ 44 ॥ सम्यगदृष्टि-  
 श्रावक-विरतानन्त-वियोजक-दर्शन मोह क्षपकोप शमकोप  
 शान्त मोह-क्षपक-क्षीण मोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुण  
 निर्जराः ॥ 45 ॥ पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ- स्नातका  
 निर्ग्रन्थाः ॥ 46 ॥ संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योप-

पाद-स्थान विकल्पतः साध्याः ॥ 47 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ 9 ॥

मोह-क्षयाज्-ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥ 1 ॥  
 बन्ध-हेत्व-भाव निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्र-मोक्षो-मोक्षः ॥  
 2 ॥ औपशमिकादि भव्यत्वानां-च ॥ 3 ॥ अन्यत्र केवल-सम्यक्त्व  
 ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥ 4 ॥ तदनन्तर मूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्  
 ॥ 5 ॥ पूर्वप्रयोगा-दसङ्गत्वाद् बन्धच्-छेदात्-तथागति  
 परिणामाच् च ॥ 6 ॥ आविद्ध-कुलाल-चक्रवद्-व्यपगत-  
 लेपालाम्बु-वदेरण्ड बीज-वदग्नि-शिखावच्च ॥ 7 ॥  
 धर्मास्तिकाया-भावात् ॥ 8 ॥ क्षेत्र-काल-गति-लिङ्गं-तीर्थ-  
 चारित्र-प्रत्येक-बुद्ध बोधित-ज्ञानावगाह-नान्तर संख्याल्प  
 बहुत्वतः साध्याः ॥ 9 ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ 10 ॥

अक्षर-मात्र-पद-स्वरहीनं, व्यञ्जन-संधि-विवर्जित-रेफम्।  
 साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥  
 दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थं पठिते सति।  
 फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ २ ॥

तत्त्वार्थ - सूत्रकर्तारं गृद्ध - पिच्छोपलक्षितम्।  
 वन्दे गणीन्द्रसंजात मुमास्वामि - मुनीश्वरम् ॥ ३ ॥  
 पढम चउक्के पढमम् पंचमए जाण पुगलं तच्च ।  
 छह सत्तमे हि आस्सव, अट्ठमे बंध णायब्बो ॥ ४ ॥  
 णवमे संवर णिज्जर, दहमे मोक्खं वियाणे हि ।  
 इहसत्त तच्च भणियं, दह सुत्ते मुणि वरिं देहिं ॥ ५ ॥  
 जं सककई तं कीरई, जं च ण सककइ तहेव सद्धहणं ।  
 सद्धहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं ॥ ६ ॥  
 तवयरणं वयधरणं संजमसरणं च जीवदयाकरणम्।  
 अंते समाहिमरणं चउगई दुक्खं णिवारई ॥ ७ ॥  
 कोटिशतंद्वादशचैव कोट्यो, लक्षण्यशीतिस्त्रयधिकानि चैव ।  
 पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतच्छुतं पञ्चपदं नमामि ॥ ८ ॥  
 अरहंत-भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सब्बं ।  
 पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदण्णाणमहोवहिं सिरसा ॥ ९ ॥  
 गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञान दर्शननायकाः ।  
 चरित्रार्णव गम्भीरा, मोक्ष मार्गोपदेशकाः ॥ १० ॥

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रं ॥